सोमसी

६

जनवरी, 1977

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, परी महल,
शिमला–171009

tharahkardu.in

Scanned with CamScanner

डोगरा सेना द्वारा 1834–1842 में अपनाया गया मार्ग

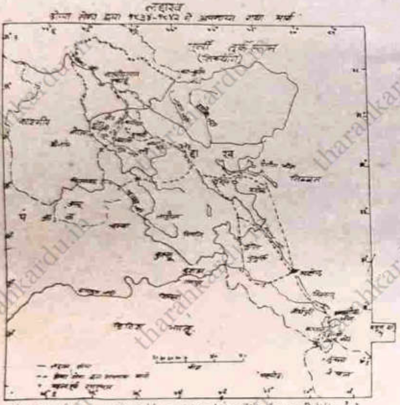

सी० एल० दत्त की पुस्तक 'Ladakh and Western Himalayan Politics' से

विवरण के लिए देखिए पृ0 18 पर प्रकाशित लेख—'जनरल जोरावर सिंह कहलूरिया'

सोमसी

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी का त्रैमासिक मुख-पत्र

वर्ष 3 | जनवरी, 1977 | अंक 1

प्रबन्ध-सम्पादक
एच० सी० पराशर

सम्पादक
डा० बंशी राम शर्मा

परामर्श-मण्डल

1. आचार्य दिवाकर दत्त शर्मा
2. श्री खेम राज गुप्त
3. श्री हरि राम जसटा
4. श्री मौलू राम ठाकुर

सहयोगी
सरोज शर्मा

प्राप्ति-स्थानः

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, परी महल,
शिमला-171009

Scanned with CamScanner

सोमसी

वर्ष 3 अंक 1

पूर्णांक—9

जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य।

लेखक के विचारों तथा दिए गए तथ्यों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं।

प्रकाशित रचनाओं को पूर्ण अथवा आंशिक रूप में उद्धृत करने के लिए सचिव, हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, परी महल शिमला-9 की अनुमति अनिवार्य है।

वार्षिक चंदा—१२ रु०

एक प्रति—३ रु०

विषयानुक्रमणिका

लेख	लेखक	पृ०
1. विभिन्न संस्कृतियों का संगम—महासू जनपद	—गोवर्धन सिंह	1
2. पहाड़ी हिमाचली भाषा में लिखित साहित्य	—प्रो० हरि राम जसटा	2
3. हिमाचल में सूर्य पूजा	—डा० लालता प्रसाद पाण्डेय	13
4. जनरल जोरावर सिंह कहलूरिया	—शक्तिसिंह चन्देल	12
5. लोक नाटक—परम्परा और सम्भावना	—कैलाश आहलूवालिया	27
6. कांगड़ा के लोक-नाट्य	—अशोक शर्मा	30
7. गणतन्त्र पद्धति का विशिष्ट आदर्श—मलाणा	—मौलू राम ठाकुर	34
8. महासू के रोहड़ू क्षेत्र की कुछ लोकोक्तियां	—आशा चौहान	40
9. कांगड़ी लोक साहित्य में जन्मगीत	विमला कुठियाला	44
10. पहाड़ी शब्दों की व्युत्पत्ति	—लेखराम शर्मा	55
11. पुस्तक-समीक्षा—हिमाचल की वनौषधि सम्पदा	—डा० वेद प्रकाश अग्नि	77
12. हिमाचल रचनाकार संगम की जुब्बल में साहित्यिक गोष्ठी	—सी० आर० बी० ललित	79
13. तुलनात्मक वाक्य अध्ययन—हिन्दी-महासुई-कुल्लुई	—मीना-विद्या	82
14. शब्द श्री	—आशा गोयल	84
15. Studies in the Systematics of Himachali Linguistics	—Dr. Siddheshwar Varma	88
16. अकादमी की गतिविधियां		91
17. रंग कला के उत्कर्ष का प्रश्न		94
18. हमारे साहित्यकार/कलाकार—स्वर्गीय यशपाल	—सरोज शर्मा	95

सम्पादकीय

प्रस्तुत अंक के साथ 'सोमसी' अपने तृतीय वर्ष में प्रवेश कर रही है। गत आठ अंकों में पर्वतीय कला, [स]स्कृति एवम् भाषा पर जो रचनाएं प्रकाशित हुई हैं उन से विभिन्न क्षेत्रों के जन-जीवन पर छिट पुट [प्र]काश पड़ता है। कुछ विज्ञ पाठकों ने जहां पत्रिका में प्रकाशित सामग्री को सराहा है वहां इस आशय के पत्र [भ]ी प्राप्त हुए हैं कि पत्रिका में 'विचार-विमर्श' के लिए स्तम्भ रहे तथा विभिन्न विषयों पर सामग्री-संकलन [क]े लिए योजना-समितियों (Planning Committees) का सहयोग प्राप्त किया जाए। अनेक मूल्यवान रचनाओं [क]े लिए जहां विद्वान लेखकों का आभार प्रदर्शन आवश्यक है वहां एक बात अखरती है कि आज का लेखक [अ]न्तर्मुखी होता जा रहा है और वह अपने सहकर्मी लेखकों का हवाला देना आवश्यक नहीं समझता। जब प्रकाशित [स]ामग्री के आकलन की बात आती है तो उस में समवर्ती अथवा परवर्ती विचारधाराओं का विवेचन लेखकों के [द]ृष्टिकोण में उदारता तथा पारिवारिक सद्भावना उत्पन्न करता है।

लोक साहित्य, कला, संस्कृति अथवा भाषा अतीत के अवशेषों का संकलनमात्र न हो कर वर्तमान समाज के जीवन्त अभिलेख हैं। हमारी परम्पराओं अथवा लोकसाहित्य में बहुत कुछ ऐसा भी प्रचलित रह जाता है जो वर्तमान समय में असंगत हो गया होता है परन्तु अब भी अभ्यस्ति के कारण प्रचलित है। परम्पराओं का समग्र अध्ययन तभी सम्भव है जब वह इतिहास व मनोविज्ञान की दृष्टि से किया जाए और जीवन-प्रसंगों तथा प्रयोजनों की भूमिका में सम्पन्न हो। उदाहरणतः लोक कहानियों तथा कहावतों के प्रचलित रूपों को ही लें। प्ररूपविज्ञान (टाइपालाजी) के आधार पर लोककथाओं के आरम्भिक ढांचे अथवा घटनाक्रम का विश्लेषण करके उसकी संगति उस जाति की संस्कृति में ढूंढी जाती है। जाति सम्बन्धी कहावतों का अध्ययन करने से पता चलता है कि यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से वर्ण-व्यवस्था हमारी स्वीकृत चिन्तनधारा के अन्तर्गत आती थी परन्तु इनमें व्यक्त आशंका, आक्षेप, उपेक्षा तथा अन्तर्जातीय विद्वेष के उद्गार इस बात को झुठलाते हैं। इनके माध्यम से यत्र-तत्र यह स्पष्ट हो जाता है कि परम्परागत समाज-व्यवस्था में भी कुछ हीनभावनाओं को अस्वीकार करने की स्थिति बनी रही। कहावतें 'विचारों के कोण' हैं अतः सामाजिक असंगतियां उनके माध्यम से अधिक मुखरित होती हैं। यही कारण है कि उनमें विरोधाभास भी दिखाई देता है।

प्रायः प्रत्येक क्षेत्र के लोक साहित्य में ऐसी सामग्री का अभाव नहीं है जो प्रचलित सामाजिक आस्थाओं व मान्यताओं के विपरीत पड़ती है। वेदों के विद्वान अध्येताओं के सन्मुख भी यह समस्या थी कि इस प्रकार की सामग्री की व्याख्या किस प्रकार की जाए। हमारे धर्म-ग्रन्थों में वर्णित देवी-देवताओं के चरित्र कभी कभी इतने अमर्यादित हो गए हैं कि उनके प्रति पूज्य भाव बनाए रखने के लिए उनका युक्तीकरण आवश्यक हो गया। यास्क ने वैदिक कथाओं को प्राकृतिक-आध्यात्मिक रूपक मान कर इस समस्या को सुलझाने में अपना जीवन लगा दिया। फ्रायड मानसिक अभिव्यक्ति को यौनवृत्ति द्वारा परिचालित मानता है। हमारे विभिन्न त्यौहार-मेलों में अश्लील अंग-संचालन तथा व्यवहार का प्रदर्शन यह सिद्ध करता है कि इनमें मानव-चेतना की इस केन्द्रीय वृत्ति की अभिव्यक्ति छद्म अथवा प्रतीकात्मक रूप में हुई है। सामाजिक तथा प्राकृतिक वर्जनाओं की सामूहिक अभिव्यक्ति किस प्रकार सम्भव है, यह इन कलापों का उद्देश्य है। अतः यह बात हेय अथवा अशोभनीय नहीं मानी जा सकती। कुछ भी हो, लोक साहित्य के विभिन्न अंगों का सम्यक अध्ययन विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित परम्पराओं के तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन के आधार पर ही सम्भव है और यह कार्य तभी हो सकता है जब लेखक एक दूसरे का सहयोग प्राप्त करें और सम्बन्धित क्षेत्रों में पहले किए गए कार्यों का विवरण अपनी रचनाओं में सम्मिलित करें। योजनाबद्ध कार्य पारस्परिक सहयोग तथा सद्भावना के आधार पर ही सम्भव है।

इस अंक के साथ ही हम अपने विद्वान लेखकों तथा अन्य विद्वानों का सद्भावना के लिए हार्दिक धन्यवाद करते हैं और भविष्य में भी उनके सहयोग की पूर्ण कामना करते हैं।

—बंशी राम शर्मा

विभिन्न संस्कृतियों का संगम—महासू जनपद

—गोवंधन सिंह

किसी भी देश या उस के किसी भाग, समाज या जाति वर्ग का अपना इतिहास और संस्कृति होती है। इतिहास का निर्माण जहां उस देश के सम्राट और वीर पुरुष करते हैं वहां संस्कृति उस देश के निवासियों की देन होती है। इसी प्रकार महासू भू-खण्ड का भी अपना इतिहास और संस्कृति रही है।

भौगोलिक दृष्टि से यह भू-खण्ड कोई सात हजार किलो मीटर वर्ग क्षेत्रफल में फैला हुआ है। इस के पूर्व में यमुना की सहायक नदी तौंस, उत्तर और उत्तर-पश्चिम में सतलुज नदी और दक्षिण में घघर नदी के उद्गम इस की सीमाओं को बनाते हैं। इस का निर्माण बुशहर, जुब्बल, क्यूंथल, बघाट, बाघल आदि आदि छोटे छोटे पहाड़ी राज्यों का एकीकरण कर के हुआ था, इन में सब से प्राचीन राज्य बुशहर था जिस की सीमायें एक ओर तौंस नदी से छूती थीं और दूसरी ओर तिब्बत से लगती थीं। चूंकि इस पर्वतीय भू-भाग में मुख्य रूप से महासू देवता की पूजा होती है, इसलिए उस के नाम पर सन् 1948 में ही इस क्षेत्र का भी नामकरण कर दिया गया।

महासू भू-खण्ड को तीन विभिन्न संस्कृति के लोगों ने बसाया। कोल, यहां के मूल निवासी माने जाते हैं। इन से पहले यहां पर कौन रहते थे यह बात निश्चित रूप से कुछ नहीं कही जा सकती। इस जाति ने नव-पाषाण युगीन संस्कृति की नींव डाली। सम्भवतः इस क्षेत्र में आज के कोली, हाली, डूम, चनाल, रेहड़, बाढ़ी, आदि नामों वाले लोग इसी जाति में से हैं। प्रागैतिहासिक काल में यह जाति सतलुज, यमुना और गंगा नदियों के मैदानों में बसती थी। बाद में सिन्धु संस्कृति के लोगों ने अपना विस्तार उत्तर-पूर्व की ओर कर के उन्हें उपजाऊ प्रदेशों से भगा कर अपना अधिकार कर दिया और कोल लोगों ने जंगलों और पहाड़ों में भाग कर शरण ली। महासू क्षेत्र में इन का यह प्रवेश सतलुज, सरस्वती, गिरि, तौंस और यमुना नदी घाटियों से होता हुआ रहा होगा। इन की भाषा के प्रभाव के चिन्ह यहां की बोलियों में स्पष्ट और निश्चित रूप से पाये जाते हैं। इस जाति के लोग झुण्डों में रहते थे। पशुपालन तथा कृषि ही इन का मुख्य व्यवसाय था। अनुमान है कि हिन्दू धर्म और संस्कृति में जो बातें न आर्यों की हैं और न द्रविड़ों की वे सम्भवतः इसी जाति की हैं। जैसे हिन्दू धर्म में नाग, गणेश इत्यादि पशु देवता इसी प्राचीन जाति की देन हैं।

दूसरी संस्कृति के लोग उत्तर-पश्चिम की ओर से आये। इतिहासकारों का मत है कि जब आदि आर्य लोग अपने मूल स्थान मध्य एशिया से नये देश और उपनिवेश की खोज में निकले तो उन की एक टोली तो सीधी ईरान होती हुई धीरे धीरे योरुप तक बढ़ती गई। दूसरी टोली दो दलों में बंट कर हिन्दुकुश पर्वत को पार कर के सिन्धु घाटी की ओर मुड़ी। आर्यों की तीसरी टोली जो खश नाम से प्रसिद्ध हुई, मध्य एशिया से काशगर, गिलगित, कश्मीर की ओर मुड़ी। पहाड़ों ही पहाड़ आगे बढ़ते हुए कशगिरी, कश्मीर, कांगड़ा, कुल्लू, महासू, गढ़वाल और कुमायूं होते हुए खश लोग पूर्वी नेपाल तक फैल गये। सप्त सिन्धु में वैदिक आर्यों के छा जाने से पूर्व ही इस जाति के लोग मध्य एशिया से आकर नेपाल तक फैल गये। जब खश यहां आये तो उन्हें यह प्रदेश बहीड़ नहीं मिला। उन्हें पहले से ही बसी कोल जाति के लोगों से सामना करना पड़ा। उन्हें अन्य क्षेत्रों

Scanned with CamScanner

के समान महासू भू-खण्ड पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित करते हुए लम्बा समय लगा होगा, इस बात का अनुमान उन द्वारा स्थापित अनेक उपनिवेशों जैसे महासू मण्डल के रोहड़ू क्षेत्र में स्थित खशधार, खरशाली, खशकण्डी आदि गांव से लगता है। सम्भव है वह पहले एक स्थान पर अपने पांव जमाते होंगे और उस के बाद वहां से आगे बढ़ते होंगे। उन्हें कदम कदम पर यहां के आदि निवासियों के साथ संघर्ष भी करना पड़ा होगा। परम्पराओं, लोक नाट्यों, लोक गाथाओं और लोक कथाओं से इस महान जाति का पता लगता है, जो कोलो व नागो की प्रधानता के बाद उन की भूमि में धीरे 2 सर्वे सर्वा बन गई और कोलो एवं नागों की इस भूमि को खश देश बनाने में सफल हुए। इस प्रकार वे महासू खण्ड के विभिन्न भागों पर अपनी छाप छोड़ गये।

जब वे स्थाई तौर पर बस गये तो उन्होंने अपने को कुटुम्बों और गांव के रूप में संगठित किया। हर एक समूह ने अपने कुल के किसी सयाने व्यक्ति को अपना मुख्य चुन लिया। उसे लोग मावी या मावणा कहने लगे। सभी उसका आदर करते थे और उसे कर देते थे। ये मावणे आपस में भी लड़ते रहते थे। शक्तिशाली मावणा कमजोर को दबा लेता था और कभी कभी उस का क्षेत्र अपने मावणा में भी मिला लेता था। इस प्रकार से प्राचीन काल में महासू क्षेत्र छोटे छोटे मावणों में बंटा हुआ था। कालान्तर में राजनैतिक कारणों से मावणा परम्परा सुकड़ती गई और जनपद राजनैतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक अर्थात् हर दृष्टिकोण से एक इकाई के रूप में खड़े हुए। यह जनपद पाणिनि काल तक अपने पूर्ण विकास पर पहुंच गये थे। पाणिनि का काल 5 वीं सदी ई0पूर्व से पहले माना जाता है जिस ने पश्चिमी हिमालय के जनपदों का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है। इन जनपदों का वर्णन उस से उदीच्य नाम से किया है। इन उदीच्य जनपदों में एक नाम कुलिन्द है। इस जनपद का वर्णन हमें महाभारत, बृहत्संहिता, विष्णु पुराण और मार्कण्डेय पुराण में मिलता है। इन ग्रन्थों के अनुसार यह जनपद उत्तर में स्थित था। अलगजान्डर कनिंघम के अनुसार सतलुज नदी के दोनों ओर के पर्वतीय प्रदेश विशेष कर शिमला व सोलन जिलों के क्षेत्र कुलिन्द प्रदेश में आते थे। उस का यह भी मत है कि कुल्लू से लेकर गढ़वाल तक के इस पर्वतीय प्रदेश में आज के कनैत कुलिन्दों के ही वंशज हैं। कुलिन्द सदा पर्वत वासी थे और उन का देश पार्वत्य था जो व्यास नदी के उत्तरी भाग से लेकर यमुना नदी तक फैले हुए हिमालय के इस पर्वतीय प्रदेश में जिसे आज हम महासू जनपद कहते हैं, विस्तृत था।

इस जनपद ने अपने समृद्ध काल में ताम्बे और चान्दी की मुद्रायें भी चलाई। मुद्राओं पर इन का नाम कुलिन्द मिलता है। इन की मुद्रायें दो प्रकार की थीं। पहली मुद्रा पर मृग की आकृति है और साथ में अमोघभूति का नाम लिखा है। इस ने चांदी और तांम्बे की मुद्रायें चलाई। कुलिन्दों की ये मुद्रायें कई स्थानों से प्राप्त हुई हैं। कुछ मुद्रायें कांगड़ा, ज्वालामुखी, मण्डी से और कुछ अम्बाला, सहारनपुर के बीच वाले भाग से मिली हैं। गढ़वाल में भी कुलिन्दों की मुद्रायें मिली हैं। अमोघभूति की ये मुद्रायें ईसा पूर्व काल की हैं। दूसरी छतेश्वर वाली मुद्रा तीसरी शताब्दी की है। ये मुद्रायें ई0 पू0 150 से सन् 200 तक प्रचलित थीं। मृग वाली मुद्राओं के अग्रिम भाग में कमल सहित लक्ष्मी की मूर्ति एक मृग, छत्र सहित चौकोर स्तूप तथा एक चक्र बना है। तथा ब्राह्मी में "अमोघभुतस महरजस राज्ञकुणदस" लिखा है। कुलिन्द शासकों ने कुछ समय पूर्व भारतीय यूनानी राजाओं द्वारा प्रचलित चांदी की मुद्राओं के स्थान पर देशी ढंग से चांदी की मुद्रायें तैयार कराई। पृष्ट भाग पर सुमेरु पर्वत, स्वस्तिक, नन्दिपाद तथा बोधी वृक्ष बनाया गया है। खरोष्टी में "राञो कुणिदस अमोघभूति महरजस" लिखा है। इस के अतिरिक्त कुलिन्द जाति के छतेश्वर नामक राजा की ताम्बे की मुद्रा मिलती है। उस के अग्र भाग में त्रिशूल लिये शिव की मूर्ति खड़ी है। रैपसन ने उस पर "भागवत छतेश्वर महात्मन" पढ़ा है। पृष्ट भाग में मृग, नन्दिपाद, बोधी वृक्ष तथा सुमेरु पर्वत आदि की आकृति पाई जाती है। इन की ताम्बे की मुद्रायें साधारणतः जनपद के भीतर ही चलती थीं। इन पर लिखे ब्राह्मी लेखों से पता चलता

है कि वह राज्य की मान्य लिपि रही होगी। चांदी की मुद्राओं पर, जो अधिकांश जनपद से बाहर चलती थीं, खरोष्टी लिपि में लिखा मिलता था।

अमोघभूति के पश्चात् शकों और हूणों ने दक्षिण की ओर से कुलिन्दो पर आक्रमण भी किये। किलन्दों ने पंजाब के योद्धयों और अर्जुनायन के साथ मिल कर कुषाण राज्य को नष्ट करने के लिये एक दृढ़ संघ बनाया था। इस में वे सफल भी हुए। इस से अनुमान लगाया जा सकता है कि वे बड़े वीर थे। समुद्रगुप्त के इलाहाबाद के शिला स्तम्भ लेख में किलिन्दों का नाम नहीं मिलता। इस से प्रतीत होता है कि यह जनपद 350 ई0 पू0 से पूर्व ही खत्म हो चुका होगा।

मौर्य सम्राट अशोक (272–232 ई0 पू0) ने नेपाल से लेकर कश्मीर तक का सारा हिमालय अपने अधिपत्य में कर लिया था। परन्तु राज्य व्यवस्था के लिए वहां के स्थानीय शासकों को वहीं का शासन प्रबन्धक बना दिया। उस ने हिमालय में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए बौद्ध भिक्षु भी भेजे। वह तथा उसकी पुत्री चारुमती स्वयं नेपाल गये। कश्मीर में उस के पुत्र कुणाल तथा भिक्षु मज्झन्तिक ने यह कार्य किया। अशोक ने हिमालय में प्रचार करने के लिये आचार्य मज्झिम थेर को नियुक्त किया जिस का पता हमें महावंश से लगता है। परन्तु इस ग्रंथ की टीका में उस के चार साथियों के भी नाम दिये गये हैं। ये साथी कस्पगोत, दुन्दुभिसार, सहदेव और मुलक देव थे। इन नामों की पुष्टि सांची के स्तूप से प्राप्त एक पत्थर के सन्दूक में एक धातु मंजूषा से भी होती है। महावंश में लिखा है कि मज्झिम और उस के चार साथियों ने हिमालय के पांचों राष्ट्रों में प्रचार किया। प्रतीत होता है कि चम्बा से ले कर कुमाऊं-गढ़वाल तक के प्रत्येक देश में उन्होंने बौद्ध धर्म का सन्देश पहुंचाने का यत्न किया। हो सकता है कि इन्हीं प्रचारकों ने तौंस और यमुना नदियों के संगम पर स्थित कालसी का शिला लेख भी खुदवाया होगा और इधर से ही उन्होंने हिमालय में प्रवेश किया हो जो महासू क्षेत्र की तौन्स, पब्बर नदी घाटियों द्वारा हुआ होगा।

188 ई0 पू0 के लगभग मौर्य साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया। इस के साथ ही दूर के जनपद विशेष कर दुर्गम पर्वतीय जनपद सब से पहले उस से अलग हो गये। इन में कुलिन्द जनपद भी था, परन्तु इन की यह स्वतन्त्रता स्थाई न रह सकी क्योंकि ईसा पूर्व की पहली शताब्दी के आरम्भ में उत्तर पश्चिम की ओर से शकों और कुषाणों के आक्रमण आरम्भ हुए। इस नई शक्ति ने मध्य एशिया से ले कर बनारस तक का समस्त भू-भाग अपने अधिपत्य में कर लिया। इस में कश्मीर से ले कर कुमाऊं तक के पर्वतीय क्षेत्र भी थे। कुषाणों ने साम्राज्य की स्थापना के साथ साथ शासन की सुविधा के लिये राज्य को प्रान्तों में बांट दिया। स्थान स्थान पर अपने कर्मचारी नियुक्त किये। दूसरे शब्दों में किसी प्रान्त (जनपद) का राजा, सम्राट का अधिकारी बन गया और शासन करता रहा। जब केन्द्रीय सत्ता कमजोर हो गई तो वहां के शासक स्वतन्त्र हो जाते थे। कुषाण राज्य के पतन के बाद कई प्रान्त स्वतन्त्र हो गये। यही स्थिति कुलिन्द जनपद की भी रही। अन्त में इन्हें चौथी शताब्दी में गुप्त सम्राटों ने जीत कर अपने अधीन कर लिया। गुप्त साम्राज्य की पश्चिमी सीमा सतलुज से लगती थी और कुलिन्द जनपद सतलुज से पूर्व की ओर पर्वतीय क्षेत्र में विस्तृत था। अतः कुलिन्द जनपद जिसे आज महासू जनपद से पुकारते हैं, ईसा की चौथी शताब्दी से लेकर छटी शताब्दी के मध्य तक गुप्त साम्राज्य और उस के पश्चात् सातवीं शताब्दी के मध्य तक थानेश्वर-कन्नौज के मुखरी साम्राज्य का भाग बना रहा।

मुखरी सम्राट हर्षवर्द्धन (606-47) की मृत्यु के पश्चात् उत्तरी भारत में कोई ऐसा शासक नहीं हुआ जो हिमालय सहित समस्त भारत की एकता को अक्षुण बनाये रखता। फलस्वरूप भारत में अव्यवस्था एवं अराजकता फैलने लगी तथा तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों पर इनका प्रभाव पड़ा। इसी उथल

पुथल के कारण जहां एक ओर अनेक राजवंशों ने जन्म लिया वहां दूसरी ओर सामाजिक व्यवस्था म भी कई परिवर्तन हुए । इन नये राजवंशों का सम्बन्ध राजपूत जाति से माना जाता है । सातवीं, आठवीं, शताब्दी में अपने आप को एक राजनीतिक एवं सामाजिक समूह के रूप में संगठित करने के पश्चात् ये राजपूत लोग बड़ी तीव्र गति के साथ चारों ओर फैलाने लगे । सब से पहले राजपूताना में बसे । उस के बाद पंजाब, उत्तर प्रदेश और आगे बिहार तक फैल गए। और अन्त में उत्तर-पश्चिम हिमालय और मध्य हिमालय जिस में महासू भू-भाग भी आता है, की भीतरी घाटियों में बढ़कर वहां के स्वामी बन गए आठवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक के इन चार सौ वर्षों के काल में भारत की राजसत्ता इन के हाथों में रही । इसी कारण भारतीय इतिहास का यह काल "राजपूत काल" के नाम से जाना जाता है ।

महासू खण्ड के इतिहास के जिस काल का यहां वर्णन किया जा रहा है उस काल में इस पर्वतीय प्रदेश में दो प्रकार के राज्यों का उल्लेख मिलता है । इन राज्यों में एक तो ऐसे राज्य थे जो प्राचीन काल से चले आ रहे थे और जिन के शासक प्राचीन क्षत्रिय कुलों से थे। इस प्रकार के राज्य में हमें केवल बुशहर ही नाम मिलता है । क्योंकि इस राज्य की वंशावली तथा इतिहास कम से कम ईसा की शताब्दी तक पीछे चला जाता है । दूसरे राज्य वे हैं जिन के शासक आठवीं नौवीं शताब्दी से ले कर पंद्रहवीं शताब्दी तक के काल में भारत के मैदानी भाग से इस पर्वतीय भू-खण्ड में आये । ये लोग ऐसे राजपूत कुलों से थे जिन्हें विभिन्न परिस्थितियों के कारण अपनी जन्म भूमि को छोड़ने पर विवश होना पड़ा ।

इन छः सात सौ वर्षों में इन राजपूत साहसिकों ने मैदानी भाग से आकर सतलुज और तौंस नदियों के मध्य भाग में कई छोटे छोटे राज्य स्थापित किये और बढ़ते बढ़ते इन की संख्या तीस तक पहुंच गई । समय बीतने के साथ साथ ये रजवाड़े दो समूहों में बंट गये और बारह ठाकुराई और अठारह ठाकुराई नाम से प्रसिद्ध हुए । बारह ठाकुराईयों में शिमला से नीचे के रजवाड़े आते थे और अठारह में शिमला से ऊपर वाले भाग के रजवाड़े । बारह ठाकुराइयों के नाम इस प्रकार थे :—

(1) क्यून्थल	(7) कोटी
(2) बाघल	(8) महलोग
(3) बघाट	(9) मांगल
(4) कुठार	(10) कुनिहार
(5) धामी	(11) बेजा
(6) भज्जी	(12) क्यारी

अठारह ठाकुराइयों में ये रजवाड़े आते थे ।:–

(1) जुब्बल	(11) बलसन
(2) सारी	(12) दरकोटी
(3) रावींगढ़	(13) थेलठ
(4) कोटखाई, कोटगढ़	(14) थरोच
(5) खनेटी	(15) ढाड़ी
(6) कुमारसेन	(16) करांगल
(7) घुण्ड	(17) भरोली
(8 मधान	(17) भरोली
(9) ठ्योग	(18) सांगरी
(10) रतेश	

क्यून्थल की नींव बंगाल के सेन वंश के अन्तिम राजा लक्ष्मण सेन के पुत्र रूप सेन के तीसरे पुत्र गिरि सेन ने 13वीं शताब्दी के आरम्भ में डाली । इस वंश में 79 राजा हुए ।

बाघल की स्थापना उज्जैन से आये एक अजय देव पनवार ने डाली ।

बघाट के संस्थापक का नाम बसन्त पाल पनवार था जो दक्षिण भारत में स्थित धारा नगरी से आया कहा जाता है ।

कोटी और भज्जी रजवाड़ों की स्थापना कांगड़ा के एक छोटे राज्य कुटलेहड़ के दो राजकुमारों चाडू और चन्द ने डाली । चाडू ने भज्जी की और चन्द ने कोटी की नींव डाली ।

महलोग को अयोध्या से आये एक वीर चन्द नामक व्यक्ति ने बसाया ।

धामी का संस्थापक चौहान वंशीय राजपूत था जो शाहबुद्दीन गौरी के आक्रमण के कारण दिल्ली से भाग कर पहले अम्बाला आया और फिर धामी ।

कुठाड़ रजवाड़े की नींव किश्तवाड़ से आये एक सूरत चन्द ने रखी

कुनिहार के आदि पुरुष का नाम अभोज देव था जो जम्मू के पास अखनूर से आया था और उस ने सन् 1154 में इस छोटे से राज्य को स्थापित किया था ।

मांगल का संस्थापक मारवाड़ से आया कहते हैं ।

बेजा को देहली के तनवार वंशीय शमशेर चन्द के पड़पौत्र गर्वचन ने बसाया ।

अठारह ठाकुराईयों में जुब्बल का प्रमुख स्थान था । जुब्बल के इतिहास और परम्परा के अनुसार जुब्बल वंश के पूर्वज 12 वीं शताब्दी से पूर्व सिरमौर में राज्य करते थे । उन की राजधानी सिरमौरी ताल थी जिस के अब केवल खण्डरात ही मिलते हैं । कहते हैं कि एक बार वहां का राजा उग्र चन्द अपनी रानी, तीन पुत्रों, कर्म चन्द, दुनी चन्द और मूल चन्द के साथ ग्रीष्म ऋतु को बिताने के लिये हाटकोट गया हुआ था। वहां से किसी कारण उसे एक दम वापस सिरमौरी ताल को लौटना पड़ा और रानी तथा तीनों पुत्र वहीं पर रह गये। इन ही दिनों गिरि नदी में बाढ़ आ गई और सिरमौरी ताल का सारा नगर बाढ़ में बह गया । राजा भी उस में मारा गया । इस दुःखद घटना का समाचार रानी को समय पर न मिल सका। उधर उन्हीं दिनों हरिद्वार में जैसलमेर का सालवाहन दूसरा तीर्थ यात्रा के लिये आया हुआ था । जब उस को पता चला कि सिरमौर का सारा राजपरिवार गिरि की बाढ़ में बह गया है और राज गद्दी खाली है तो उस ने अपने पुत्र को सेना सहित सिरमौर पर अधिकार करने के लिए भेजा । इस प्रकार उग्रचन्द्र की अकस्मात मृत्यु के पश्चात् कर्म चन्द, दुनी चन्द और मूल चन्द को अपने पैतिक राज्य से हाथ धोना पड़ा । इस के पश्चात् उन्होंने 12 वीं शताब्दी के आरम्भ में कोटी के आस पास के क्षेत्र को आपस में बांट कर अपने लिये नये राज्य स्थापित किये। कर्म चन्द ने जुब्बल मूल चन्द ने सायरी, और दुनी चन्द ने रावींगढ़ की नीवें डालीं ।

बलसन की स्थापना भी सिरमौर के प्राचीन राठौड़ वंश से निकले एक अलक सिंह होनहार व्यक्ति ने कोई साढ़े सात सौ वर्ष पूर्व की । रतेश का प्रथम ठाकुर सिरमौर के राजा कर्म प्रकाश (1616—1630) का भाई राय सिंह था । इस क्षेत्र को कोट भी कहते थे ।

कुमहारसेन के इतिहास के अनुसार इस रजवाड़े का संस्थापक किरत सिंह ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में महमूद गजनी के भय से अपने भाईयों सहित गया से भाग कर इन पहाड़ों में आया था । कुछ के अनुसार सब से पहले वे करांगला में आये परन्तु अन्य लोगों के अनुसार वे कुमहारसेन में आ कर बसे और किरत सिंह ने कुमहारसेन ठाकुराई की नींव रखी । बाद में इसी के वंशजो ने समय समय पर जुदा निकल कर अन्य ठाकुराईयों की स्थापना की । इन में संसार चन्द ने करांगला, सबीर चन्द ने खनेटी, और अहीमल ने कोटखाई–कोटगढ़ के रजवाड़े स्थापित किये । **देलठ** की स्थापना कुमहारसेन के संस्थापक किरत सिंह के भाई पृती सिंह ने की कही जाती है । घुण्ड, ठ्योग और मधान ठाकुराईयां के संस्थापक एक ही स्रोत से थे । कहते हैं कि बहुत पुराने समय में एक चंदेल वंशीय राजकुमार जयपुर से बद्री नारायण की तीर्थ यात्रा के लिए गया । उसे उधर का पर्वतीय क्षेत्र बहुत भाया और रामा सराय में बस गया । वहां से वह बिलासपुर चला गया । वहां उस के चार पुत्र हुए । उस के उन पुत्रों ने आकर अपने लिये पृथक–2 राज्य स्थापित किये । बड़े पुत्र ने मधान, तीसरे ने ठ्योग और चौथे पुत्र जनजन सिंह ने **घुण्ड** को स्थापित किया ।

थरोच की परम्परा के अनुसार अलाउद्दीन खिलजी के समय में उदयपुर से एक राजकुमार देवकर्ण भाग कर सिरमौर में आबाद हुआ । उस समय थरोच सिरमौर का भाग था । कुछ समय पश्चात् सिरमौर के राजा ने थरोच का क्षेत्र देवकर्ण के वशंज किशन सिंह को प्रदान किया और उन्हें राणा बना दिया । थरोच परिवार से ही निकले किसी राजकुमार ने **ढाड़ी** ठाकुराई को जन्म दिया ।

दरकोटीकी बुनियाद जयपुर राजपरिवार के एक दुर्गा सिंह ने डाली ।

सांगरी का क्षेत्र पहले बुशहर का था । 18वीं शताब्दी में इसे कुल्लू के राजा मान सिंह ने बुशहर से हथिया लिया ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्य काल में महासू क्षेत्र छोटे छोटे राजे रजवाड़ों में बंटा हुआ था । ये सदा आपस में लड़ते झगड़ते रहते थे । इन में ऐसा कोई भी शक्तिशाली शासक नहीं निकला जो सभी को अक्षुण कर के एक विशाल राज्य स्थापित करता । इन के उत्तर में बुशहर पूर्व में गढ़वाल, दक्षिण में सिरमौर और पश्चिम में कुल्लू तथा बिलासपुर राज्य थे । इन राज्यों की कुदृष्टि सदा इन छोटे छोटे रजवाड़ों पर लगी रहती थी । मौका लगने पर इन्हें दबा कर अपने अधीन भी कर लेते थे ।

बारहवीं शताब्दी से मुसलमानों के आक्रमण आरम्भ हुये परन्तु किसी भी आक्रमणकारी या मुसलमान शासक या सेनानी ने आक्रान्त हो कर इस पर्वतीय क्षेत्र में प्रवेश नहीं किया । वे कांगड़ा, सिरमौर और गढ़वाल में प्रवेश कर गये परन्तु उन के यहां आने का कोई उल्लेख नहीं मिलता । बारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक दिल्ली पर मुसलमानों का अधिपत्य रहा जिस के कारण सारे देश की सत्ता उनके हाथों में रही । पहाड़ी राजों, राणों तथा ठाकुरों ने भी इन का लोहा माना और इन की प्रभुसत्ता को स्वीकार किया । वे उन्हें राज-कर भी देते थे जो नाम मात्र का ही होता था । कांगड़ा, सिरमौर व गढ़वाल के राजे तो मुगल दरबार में जाते थे परन्तु ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलती जिस से यह पता लगे कि बारह और अठारह

ठाकुराइयों के नरेश भी मुगल दरबार में गये हों । इतनी जरूर श्रुति है कि जब कभी मुगल सम्राट या उन के परिवार के लोग ग्रीष्म ऋतु को बिताने के लिये पंजौर के उद्यान में आते थे तो यहां के कोई कोई राणे अथवा ठाकुर उनको मिलने पंजौर जाते थे ।

मुगलों की सत्ता देर तक न चल सकी । अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में उत्तर पश्चिम की ओर से फिर मुसलमानों के आक्रमण आरम्भ हुए । 1738–39 में नादिरशाह ने आक्रमण किया । उस ने मुगलों की शक्ति को छिन्न-भिन्न कर दिया । 1748 से अहमदशाह अबदाली के आक्रमण आरम्भ हुए । इस से पंजाब और पहाड़ी इलाकों के राजा अबदाली के प्रभाव में आ गये ।

ऐसी राजनीतिक उथल-पुथल में 17वीं शताब्दी के आठवें दशक में तीन नई शक्तियों का उदय हुआ । इन में (1) पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह (1780—1839 ई0), (2) कांगड़ा के महाराजा संसार चन्द (1775–1823 ई0) और (3) पूर्व में नेपाल के महाराजा पृथ्वी नारायण शाह (1742—1778 ई0) पहली दो शक्तियों का तो इन बारह और अठारह ठाकुराईयों तथा बुशहर पर कोई बड़ा प्रभाव नहीं पड़ा परन्तु गोरखा साम्राज्य पश्चिम की ओर विस्तार करके 1805 ई0 तक कांगड़ा तक पहुंच गया । उन्होंने पहले कुमाऊं फिर गढ़वाल, सिरमौर और बारह और अठारह ठाकुराइयों पर अधिकार कर लिये । उत्तर की ओर वे दक्षिण किन्नौर तक बढ़ते चले गये । उन का वह अधिकार इस क्षेत्र पर 1803 से लेकर 1815 तक रहा । 1815 ई0 में अंग्रेजों और गोरखे के मध्य युद्ध हुआ । इन पहाड़ी राजाओं ने मिल कर अंग्रेजी सरकार को भरपूर सहयोग दिया और गोरखे इस देश को छोड़ कर वापस नेपाल लौट गये । इस के साथ ही सतलुज और तौंस नदी के मध्य वाले भाग के सभी राजे, राणे तथा ठाकुर अंग्रेजी सरकार के अधिपत्य में आ गये । अंग्रेजी सरकार ने इन राजाओं के साथ सन्धि कर के इन के राज्य वापस लौटा दिये और उन्होंने भी सरकार को कर देना स्वीकार कर लिया ।

1857 के स्वतन्त्रता संग्राम में केवल बुशहर का राजा शमशेर सिंह था, जिस ने अंग्रेजों का विरोध किया । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की देखा देखी में शिमला की पहाड़ी रियास्तों में भी राजनीतिक जागरण सन् 1920–22 से होने लगा । इन की गतिविधियों का केन्द्र शिमला नगर रहा क्योंकि यहां पर लोग सभी रियास्तों से आकर मिलते और रियास्ती पकड़ धकड़ से भी बचे रहते । अन्त में इन का परिश्रम फल लाया और 15 अप्रैल, 1948 में महासू नाम से हिमाचल प्रदेश का एक महत्वपूर्ण भाग बना ।

[जुब्बल में अकादमी की अक्तूबर, 1976 गोष्ठी में विवेचित निबंध]

ग्रन्थ सूची

कपूर, (डा0) बी0 एल0 — हिमाचल इतिहास और परम्परा, दिल्ली, 1976 ।

गोवर्धन सिंह — "प्रागैतिहासिक हिमाचल" सप्त सिन्धु

गोवर्धन सिंह — "हिमालय के प्राचीन प्रजातन्त्र" हिमप्रस्थ, जनवरी, 1966 पृ0 14–22

गोवर्धन सिंह — "पूर्व मध्य कालीन हिमाचल", हिमप्रस्थ, अप्रैल, 1966 पृ0 25–33 ।

ग्रीफन एल0 — शिमला तथा पंजाब के देशी नरेश, बनारस, 1942 ।

ग्रीफन. एल0 — तजकराय रूसाये पंजाब, लाहौर, 1940, भाग 2 ।

दुर्गा सिंह — रपोर्ट बन्दोवस्त रियास्त कयून्थल, शिमला 1901 ।

भगवान दास — तुआरिख कोहस्तान जुब्बल, शिमला, (ल0 1895) ।

भगवन्त दीवान राय — बाहरे कुमहारसेन, दिल्ली, 1930 ।

शर्मा, कन्हैयालाल — ललित काव्यम, बाराणसी, (ल0 1894)

Aitchinson, C.U.	A Collection of Treaties Engagments and Savads relating to India and neighbouring countries Calcutta, 1892. V. 9.
Buck, Edward.	Simla Past and present Bombay, 1925.
Cunniughan, Alex.	Archaeological Survey of India Report of a tour in the Punjab in 1878-79 Varanasi, 1970 Vol. XIV.
D' Cruz, Andrew.	Political Relations existing between the Britsh Government and Nature States and Chiefs Subject to the Government of the North West Provinces Calcutta, 1862.
Forooqi, MA.	British Relations with Gis-Sutlej States, Lohore, 1942.
Fraser, Jawes Ballie.	Journal of a tour through Parts of the Himala mountain and the sources of the river Jumna and Ganges Landon 1820.
Griffin, L. H. and Massy, C. F.	Chiefs and familis of the Note in the Punjab, Lahore, 1940 Vol 2.
Himachal Pradesh University	Himachal Past, Present and Future Simla 1975.
Hamilten, walter.	Description of Hindustan London, 1820, Vol. 2.
Pemble, John	The Invasion of Nepal, Oxford, 1971.
Punjabi Government	Simla District Gazetteer Part A. Lahore, 1910.
Punjab Government	Simla Hill States Gazetteer Lahore, 1911.
Shavan M. K.	Tribal Coins—a Study Delhi, 1972.
Stiller, L. F.	The Rise of the House of Gorkha Delhi, 1973.
Wace (Lt Col.) E.G.	Final Report on the First Regular Settlement of the Simla District in the Punjab Calcutta, 1884.

पहाड़ी हिमाचली भाषा मे लिखित साहित्य

--प्रो० हरि राम जसटा

भाषा ध्वनि संकेतों के रूप में वह साधन है, जिसके द्वारा हम अपने भाव और विचार प्रकट करते हैं। दूसरे के भाव और विचार समझ सकते हैं। भाषा लिखित हो या बोल चाल की उसके द्वारा मानव व्यक्तित्व की शब्दों में अभिव्यक्ति मिलती है। प्रारम्भ में मनुष्य अपने मनोभावों को श्वासोवास के साथ निकलने वाली ध्वनियों के रूप में व्यक्त करता होगा; फिर अनुकरण के आधार पर कुछ शब्द उसके शब्दकोप में सम्मिलित हुए होंगे। धीरे 2 शब्दों के नए मेल गठित हुए उनके साथ नए अर्थ जुड़े। अनेक कारणों से ध्वनियों में परिवर्तन होते चले, अर्थों में परिवर्तन हुए। अनावश्यक शब्द लुप्त हो गए, नए सम्पर्कों के साथ नए शब्द आए और इस तरह भाषा विकसित होती चली। यही सब कुछ पहाड़ी भाषा के साथ भी होता रहा।

भारत की प्रत्येक प्रांतीय (क्षेत्रीय) भाषा हमारी अमूल्य निधि है और राष्ट्रीय एकता के लिए इन सबका विकास जरूरी है। सभी भाषाएं एक मां की पुत्रियां और निकट सम्पर्क और नित्य आदान प्रदान से इन के अनेक लक्षण एक से हैं। किसी भाषा के नाम पर कीचड़ उछालना एक भाषा या बोली को दूसरी से श्रेष्ठ सिद्ध करने की चेष्टा देश की एकता, अखण्डता और सामंजस्य के हित में नहीं है।

पहाड़ी एक जीवित भाषा है। इस में आज तक अनेक परिवर्तन हुए और भविष्य में भी होते रहेंगे। इन परिवर्तनों के कारण यह कहना कि इसका कोई एक अन्तिम रूप नहीं होता। भाषा की प्रकृति, स्वभाव और गति की पहचान से अनभिज्ञता प्रकट करना है। जीवित भाषा का कोई अन्तिम रूप नहीं होता। भाषा में इस परिवर्तन के लिए जो महत्त्वपूर्ण तत्व काम करता है वह मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह प्रयास से सुकरता चाहता है। वैयक्तिक स्तर पर व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक बैभिन्य के कारण भाषा के रूप में परिवर्तन होते रहते हैं। यथार्थतः भाषा केवल मौखिक भाषा को कहना चाहिये। उसका लिखित रूप तो उसी मौखिक रूप पर आधारित है और उसी के पीछे 2 चलता है। यह मौखिक भाषा स्वयं अनुकरण पर आधारित है। अतः दो आदमियों की भाषा बिल्कुल एक सी नहीं हो सकती। अनुकरण प्रिय प्राणी होने पर भी मनुष्य अनुकरण की कला में पूर्ण नहीं है। इसी प्रकार भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक एवं अन्य सामाजिक कारण भी भाषा में परिवर्तन के लिए उत्तरदायी रहते है। इस लिए भाषा का कोई नितान्त स्थिर रूप संभव नहीं है। इस दृष्टि से यदि हम पहाड़ी का विकास एवं वर्तमान स्वरूप देखें, तो बहुत सारी भ्रान्तियां दूर हो सकती हैं।

मनुष्य अपने चारों ओर के वातावरण से भाषा सीखता है। पैतृक वातावरण से अलग करके भिन्न वातावरण में रखे जाने पर शिशु नए वातावरण में प्रचलित भाषा ग्रहण कर लेता है। अतः थामस डैविस का यह कथन सवर्था समीचीन है कि जो अपनी शैशवावस्था की भाषा की अवहेलना करता है, वह मृत्यु का ही आलिंगन करता है। संसार की प्रत्येक भाषा उसके बोलने वालों के भौतिक वातावरण, सांस्कृतिक प्रभाव, महान विभूतियों का प्रभाव, समाजिक, राजनैतिक एवं बोलने वालों की उन्नति के कारण विकसित होती है। और इन्हीं कारणों के कुप्रभाव, ध्यान की कमी, अशिक्षा, जानबूझकर परिवर्तन, जातीय मनोवृति इत्यादि भाषाएं मृत भी हो जाती हैं। जब एक सत्ताधारी समूह किसी भाषा की किसी बहाने उपेक्षा करता है; उस भाषा को समाप्त करना चाहता है, तो समझ लीजिए कि सम्बन्धित जाति (बोलने वालों) को सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से समाप्त करने की चेष्टा हो रही है।

Scanned with CamScanner

कमाल अतातुर्क द्वारा जब तुर्की की क्रांति के बाद अरबी और फारसी भाषा को जो पिछले 1200 वर्षों तक उस देश की सांस्कृतिक धरोहर रही, त्याग दिया गया । परिणामस्वरूप तुर्की पिछले 70 वर्षों में कोई नोबल पुरस्कार विजेता, ख्याति प्राप्त लेखक या चिन्तक उत्पन्न नहीं कर सकी और यह सत्य और भी सामने उभर कर आ जाता है, जब हम पहाड़ी (हिमाचली) के विकास पर दृष्टिपात करते हैं । आज भी हिमाचल में ऐसे लोगों की कमी नहीं जो वस्तुतः निर्दोष और शुभ कामनायुक्त हैं पर कहते नहीं झिझकते कि पहाड़ी कोई भाषा नहीं है । यह तो अनेकों बोलियां हैं । जिन में परस्पर विरोध की प्रतिशतता बहुत ही कम है । इन बोलियों की संख्या समय 2 पर घटती और बढ़ती रही है । इस संदर्भ में 5 वर्ष पहले मैंने अपनी पुस्तक हिमाचल गौरव में लिखा था—"1931 में पहाड़ी की 30 बोलियां और फिर 22, बिना किसी वैज्ञानिक आधार के दिखाई गई वही बोलियां सताधारी समूह के बजाए एक नए मातृभाषा के सिद्धान्त के आधार पर 1961 की जनगणाना में बढ़ कर 63 हो गईं । इन के अतिरिक्त 10 लाख लोगों को अनिर्धारित पहाड़ी बोलने वालों के अन्तर्गत रखा गया । उनके अनुसार चूंकि हर घाटी में नई बोलियों ने जन्म लिया, इस लिए असली पहाड़ी लुप्त हो गई । डा0 यशवन्त सिंह परमार के अनुसार "पंजाब के मैदानों में सत्ता प्राप्त करने के इच्छुक वर्गों के राजनीतिक हितों के अनुरूप ही पहाड़ी पैदा हुई, गायब हुई और फिर पैदा हुई ।"

भाषा विभाग द्वारा प्रकाशित बोलियों की संख्या के संदर्भ में श्रीयुत हरिचन्द पाराशर ने पहाड़ी (हिमाचली) भाषा पुस्तक की भूमिका में सारगर्भित प्रकाश डाला है । चूंकि हिमाचल में रियासती युग में रियासत के नाम से विशेषण बना कर अपनी भाषा को नाम देने की प्रथा थी, अतः पहाड़ी हिमाचली भाषा के अलग 2 नाम प्रचलित हो गए हैं । वे नाम आदमी के मानस पर किसी अलग भाषा की एक गलत छाप डाल देते हैं । वस्तुतः स्थिति यह है जितनी पहले रियास्तें थी, उतने भाषा रूप नहीं थे और आज भी जितने जिले हैं, उतने भाषा रूप नहीं । बोलचाल में भाषा के विभिन्न रूप हुआ करते हैं । हिन्दी के तो कई हैं । पहाड़ी के भी कई हैं । विभिन्न रूप तो धीरे धीरे उस भाषा की ताकत बन जाते हैं क्योंकि एक ही शब्द के लिए एक से अधिक शब्द प्रचलित होने से समय पाकर उनमें लक्षण व्यंजना शक्ति बढ़ती है ।

किसी भाषा में अनेक बोलियों का होना स्वाभाविक है । इस से परेशान होने की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि विकसित भाषा की भी अनेक बोलियां हैं । भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार बोली किसी भाषा के एक ऐसे सीमित क्षेत्रीय रूप को कहते हैं जो ध्वनि, रूप, वाक्य-गठन, अर्थ, शब्द समूह तथा मुहावरे आदि की दृष्टि से उस भाषा के परिनिष्ठित तथा अन्य क्षेत्रीय रूप से विभिन्न होता है । किन्तु इतनी भिन्न नहीं कि अन्य रूपों के बोलने वाले उसे समझ न सकें, साथ ही जिसके अपने क्षेत्र में कहीं भी बोलने वाले के उच्चारण, रूप रचना, वाक्य गठन, अर्थ, शब्द समूह तथा मुहावरों आदि में कोई बहुत स्पष्ट और महत्वपूर्ण भिन्नता नहीं ।

ठाकुर मौलू राम की खोजपूर्ण पुस्तक "पहाड़ीभाषा कुल्लूई के विशेष सन्दर्भ में से स्पष्ट होता है कि कांगड़ा, मण्डयाली, चम्बयाली, कुलवी, सिरमौरी, महासुवी इत्यादि पहाड़ी (हिमाचली) भाषा की भौगोलिक बोलियां हैं । इन सब बोलियों में कुछ शब्दों के उच्चारण और स्वराघात को छोड़कर अधिकांश समानता है । इसका ज्वलंत उदाहरण देखना हो तो, राज्य भाषा संस्थान द्वारा प्रकाशित पुस्तक हिन्दी हिमाचली (पहाड़ी) शब्दावली का अवलोकन कीजिए । जो आलोचक बात 2 पर जार्ज ग्रियसर्न का मत प्रकट करते हैं, वे कृपया मगधी की मिसाल है उससे हम सीख सकते हैं । जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जार्ज ग्रियंसन का भाषा वर्गीकरण अन्तिम नहीं है । उस का ऐतिहासिक महत्त्व से कोई इन्कार नहीं कर सकता ।

पिछले एक दशक से पूर्व पहाड़ी को पनपने विकसित होने, प्रोत्साहन मिलने के बहुत कम अवसर मिले । इसलिए इसमें अभी तक सूक्ष्म भावों या विचारों को गहराई से व्यक्त करने के लिये विकसित भाषा की तरह अपेक्षित सूक्ष्मता नहीं आ पाई, पर अब धीरे 2 पहाड़ी उस दिशा की ओर बढ़ रही है और वह अप्रौढ़ से प्रौढ़ होती जा रही है । भाषा विभाग द्वारा प्रकाशित "काव्य धारा के तीन भाग और हिमाचल अकादमी द्वारा प्रकाशित "पहाड़ी लोक रामायण, माला रे मणके में पहाड़ी भाषा को सूक्ष्म अभिव्यक्ति मिली है । अकादमी की पत्रिका सोमसी और भाषा विभाग की पत्रिका "हिमभारती" में प्रकाशित सामग्री तथा अन्य प्रकाशनों से दिन प्रतिदिन यह बात स्पष्ट होती जा रही है, कि पहाड़ी भाषा में भी गहन विचारों और भाषाओं की अभिव्यक्ति करने की पूरी क्षमता है । जैसे आज की हिन्दी की तुलना में कल की हिन्दी अधिक सूक्ष्म और प्रौढ़ होगी किन्तु संस्कृत की तुलना में आज की हिन्दी को सूक्ष्म और प्रौढ़ नहीं कह सकते । क्योंकि अनेक क्षेत्रों में प्रयुक्त होकर अभी तक हिन्दी विकसित नहीं हुई जिनमें संस्कृत हजारों वर्ष पूर्व हो चुकी है । यही स्थिति आज हिन्दी के मुकाबिले में पहाड़ी (हिमाचली) भाषा और उसकी अनेक प्रमुख बोलियों की है ।

पंजाबी की 11 बोलियां होते हुए भी उसके भाषा होने में तनिक सन्देह नहीं । इसी प्रकार उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और राजस्थान हरियाणा में हिन्दी अनेक बोलियों द्वारा अभिव्यक्त की जाती है । विभिन्न बोलियों के कारण भाषा विकसित होने से नहीं रुकती बल्कि इन से भाषा समृद्ध होती है । इसी प्रकार पहाड़ी (हिमाचली) भाषा की अनेक बोलियां है । जिन से पहाड़ी निःसन्देह समृद्ध हुई है और होती रहेगी । इस सत्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता ।

लोकतन्त्र में किसी भी शासन के लिए जनता के हृदय तक पहुंचने का सीधा रास्ता मातृभाषा ही है । मातृ भाषा के माध्यम से ही उसके सुख दुख आशा अभिलाषा की प्रत्यक्ष और वास्तविक जानकारी मिल सकती है । अतः भारत के विदेशी शासक कभी स्थानीय भाषाओं के प्रति सजग थे । इस लिए भाषा संस्थान की स्थापना इस संस्थान का भाषा एवं संस्कृति विभाग का रूप धारण करना और हिमाचल प्रदेश कला एवं संस्कृति अकादमी की स्थापना इस दिशा में समायक प्रयत्न थे और पहाड़ी भाषा की समृद्धि में इनकी विशेष और ऐतिहासिक भूमिका अविस्मरणीय है ।

इधर कुछ लोगों ने हिमाचल की लोकभाषा यानि मातृभाषा पहाड़ी को प्रोत्साहन देने पर उसे सरकार की हिन्दी विरोधी नीति बताया है जो नितान्त निराधार है । पहाड़ी तो हिन्दी की पोषक है और रहेगी। इस बात का प्रमाण, अवधी, ब्रज भाषा, भोजपुरी, डोगरी, राजस्थानी भाषा के लिए किए गए प्रयत्न हैं ।

प्रत्येक भाषा में संश्लेषण शक्ति होती है । भाषा की सीमा भौतिक सीमाओं से बन्धी नहीं रहती । मानव की मनोस्थिति के उतार चढ़ाव की तरह भाषायें भी पनपती और समृद्ध होती हैं। इसलिए पहाड़ी भाषा के विकास के लिए भी हमें इसकी सहायक उपभाषाओं में तालमेल रखने वाली विशेषताओं को प्रयुक्त प्रमुखता देनी होगी। यदि आप रोहड़ू से किलर (पांगी) तक यात्रा करें, तो आपको यह पता नहीं लग सकेगा कि पहाड़ी भाषा की कौन सी बोली का क्षेत्र समाप्त होता है और कौन सी बोली का क्षेत्र आरम्भ होता है । परिवर्तन इतना सहज और स्वाभाविक है कि आपको परिवर्तन का पता नहीं लग सकेगा । पहाड़ी की बोलियों की स्थिति उन मोटर सड़कों की तरह है, जो 11,000 फीट की ऊंचाई से नीचे उतरती है, लेकिन यात्री को फर्क का कहीं पता नहीं चलता । जब आप एक से दूसरे कोने पर पहुंचते हैं तभी आप को महसूस होता है कि फासला लम्बा था और ऊंचाई में जगह जगह फर्क आता रहा ।

वस्तुतः पहाड़ी की सभी बोलियां एक ही स्रोत से बनी पनपी हैं। इसलिए हमें उनके गुणों को सुरक्षित रखते हुए यह देखना होगा कि पहाड़ी भाषा की एक बोली का सौन्दर्य जहां तक सम्भव हो दूसरी बोली वाले भी समझें । पहाड़ी संस्कृति एवं भाषा की लोक परम्परायें, लोक कथायें, लोक गीत, लोक कवितायें

सभी का मूल रूप एक है । इस लिए पहाड़ी भाषा की सभी उपभाषाओं की शब्दावली का भरपूर आदान प्रदान अत्यन्त आवश्यक है । अभी तक इस ओर प्रबुद्ध लेखक वर्ग का ध्यान नहीं गया । अच्छा हो यदि किसी एक उपभाषा को पहाड़ी की केन्द्रीय भाषा बनाने के लिये पन्डोरा बक्स का ढक्कन खोल और पहाड़ी भाषा की समृद्धि के लिए सभी उपभाषाओं को ऐसे स्तर पर लाने के लिये प्रदेश के प्रबुद्ध वर्ग जुट जाएं । इसी में पहाड़ी भाषा का हित है । पहाड़ी के विकास के लिए पहाड़ी भाषा के लेखक और कविगण को एक आचार संहिता के आधार पर आगे बढ़ना होगा । जिसकी संक्षिप्त रूपरेखा यह है :

1. सभी फूल खिलते रहें ।
2. स्वयं भी जीयो दूसरों को भी जीने दो।
3. सभी साहित्यकार सभी उपभाषाओं के शब्दों का अपनी रचनाओं में भरपूर उपयोग करेंगे ।
4. प्रदेश की जिन उपभाषाओं को पहाड़ी की मूलधारा के रूप में मान्यता मिली है, उस उपभाषाओं के अध्ययन के लिए एक उपभाषा का विद्वान दूसरी उपभाषा पर शोध प्रबन्ध लिखेगा, जिसका मूल उद्देश्य पहाड़ी भाषा में एकता के सूत्र ढूंढना है ।
5. सभी उपभाषायें श्रेष्ठ हैं ।
6. सभी उपभाषाओं पर भाषा विभाग एवं भाषा अकादमी समान रूप से सुविधा पहुंचायेगी । इसके लिए सभी उपभाषा के विकास के लिए समान रूप से पैसा खर्च करने के लिये योजनाएं बनाई जायें ।
7. सभी उपभाषाओं के विकास के लिए स्पष्ट प्राथमिकतायें निश्चित की जाएं और योजनाएं बना कर लागू की जायें ।
8. सभी उपभाषाओं के क्रमिक विकास के लिए वर्ष भर में जो कदम उठाए जाएं, उनका ब्योरा भाषा विद्वानों के सामने और राज्य विधान सभा के सामने रखा जाए ।
9. पहाड़ी भाषा के विकास का मूल्यांकन करने के लिये तुरन्त एक समिति गठित की जाए, जो अभी उपभाषा के एक 2 प्रतिनिधि, भारतीय साहित्य अकादमी के सचिव केन्द्रीय भाषा संस्थान बंगलौर के निदेशक डा0 पटनायिक, डा0 सत्येन्द्र, डा0 प्रभाकर माचवे, ललित कला अकादमी के सचिव डा0 हेम चन्द जोशी, डा0 कामिल बुलकेसरी सरीखे विद्वानों को रखा जाए । इस समिति के सचिव हिमाचल प्रदेश भाषा अकादमी के सचिव हों । इस समिति को 6 महीनें के भीतर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने को कहा जाए ।

स्पष्ट निर्देशन के अभाव में पहाड़ी भाषा के विकास पर लगाये गए धन, शक्ति एवं साधनों का अपव्यय ही समझा जाएगा । इसलिए प्रत्येक संस्था, योजना, अन्दोलन और उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कुछ समय के अन्तर के साथ मूल्यांकन प्रस्तुत विषय के विकास में सहायक रहता है । नहीं तो उस वजन लेने वाली मशीन की सी दशा होगी, जिसमें आप पैसा तो डालते हैं, परन्तु वह आप को वजन नहीं बता पाती । इसलिए उस मशीन को खोल कर ठीक करने में ही बुद्धिमता है ।

[जुब्बल में अकादमी की अक्तूबर, 1976 की गोष्ठी में विवेचित निबन्ध]

संदर्भ ग्रन्थ

1. पहाड़ी (हिमाचली) भाषा-राजकीय भाषा विभाग।
2. हिमाचल गौरव, प्रो0 हरि राम जसटा—सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली–1 ।
3. पहाड़ी भाषा ठा0 मौलू राम–सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली–7 ।
4. माला रे मणके : काव्य संग्रह–हिमाचल, कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी शिमला–9 ।
5. सोमसी पत्रिका—हिमाचल कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी शिमला–9 ।
6. पहाड़ी लोकरामायण— "
7. हिमभारती—भाषा विभाग शिमला ।
8. काव्य धारा—भाषा विभाग शिमला ।

हिमाचल में सूर्य पूजा

—डा0 लालता प्रसाद पाण्डेय

भारत में सूर्य-पूजा अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित थी । स्वभावतः सूर्य के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होन के अनेक कारण थे । वह जहां पृथ्वी के लिए प्रकाश का स्त्रोत था, वहीं वह गर्मी का भी कारण था जिससे पानी, वनस्पति-जगत, मानव तथा पशु-संसार की उत्पति हुई । संभवतः इन्हीं कारणों से संसार की प्रायः सभी सभ्यताओं में इसकी पूजा का प्रचलन हुआ ।

भारतीय संस्कृति में सूर्य-पूजा वैदिक और अवैदिक दोनों कालों में प्रचलित थी । सैन्धवघाटी संस्कृति में सूर्य के प्रतीकों की उपासना हुई । वैदिक काल में इसमें विस्तार हुआ । इस समय सूर्य की अनेक स्थितियों को कई नामों से पुकारा गया । उदाहरणार्थ सूर्योदय से कुछ पूर्व की उसकी स्थिति सवितृ नाम से पुकारी गई और उसकी स्तुति में गायत्री मन्त्र का निर्माण हुआ जिसमें उसे जगत की उत्पति के कारण के रूप में प्रकल्पित करने के साथ-साथ मानसिक वृत्तियों एवं विचारों का भी प्रेरणा-स्त्रोत माना गया । ऐसी ही अन्य दशायें मित्र भृगु, विवस्वान, वरुण आदि नामों से पुकारी गई और इन सूर्य-देवों के लिए मन्त्रों का निर्माण हुआ जिसे हम ऋग्वेद में पढ़ते हैं । उत्तर वैदिक काल में इस धार्मिक धारा में आगे विकास हुआ और आगे चल कर उसने हिन्दू धर्म में एक सम्प्रदाय का रूप धारण कर लिया जिसके उपासकों ने सूर्य को अपना प्रधान देवता वैसे ही माना जैसे वैष्णवों ने विष्णु को, शैवों ने शिव को, शाक्तों ने शक्ति को तथा गाणपत्य सम्प्रदायियों ने गणेश को अपना सर्वोपरि देवता माना ।

इस सम्प्रदाय-प्रधान हिन्दुधर्म में विकसित सूर्योपासना के विविध वर्णन विशेष कर पुराणों में मिलते है जिनमें भविष्य महापुराण और साम्ब उपपुराण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सूर्य-पूजा से सम्बन्धित आख्यान तथा अन्य सूचनाएं अन्य पुराणों में भी मिलती है । और हिमाचल की उपत्यकाओं के विकसित सूर्य पूजा के भी उल्लेख इनमें पाये जाते हैं । इनके अनुसार कृष्ण पुत्र साम्ब को नारद के बताने पर पहली सूर्य-प्रतिमा चन्द्रभागा नदी में स्नान करते समय मिली जिसे उन्होने मूलस्थान (मुल्तान) में प्रतिस्थापित किया और उसकी पूजा करके उन्हें कोढ़ से मुक्ति मिली । यहां उल्लेखनीय यह है कि चन्द्रभागा नदी आधुनिक हिमाचल प्रदेश में स्थित लाहोल-क्षेत्र में बहती है । जहां सूर्य-पूजा प्राचीन काल में प्रचलित जान पड़ती है । कुछ अवशेष यहां स्थित मर्कुला देवी के मन्दिर में आज भी मिलते हैं ।

हिमाचल प्रदेश में प्रचलित सूर्य-पूजा के अवशेष अन्य स्थानों से भी मिले है । कुल्लू में हाट नामक स्थान में निर्मित विश्वेश्वर महादेव के प्रांगण से मिली एक खड़ी सूर्य-प्रतिमा विशेष रूप से उल्लेखनीय है जो आजकल शिमला में स्थित राज्य संग्रहालय में सुरक्षित है । इसमें सूर्य देव के दोनो हाथों में दो कमल के फूल कन्धें तक उठे दिखायें गये है । उसका भारी भरकम शरीर, कानों में पहने बड़े कर्ण-कुण्डल और पैरो में दिखाये गये लम्बें जूते उसकी विशेष उल्लेखनीय बातें है जो इस क्षेत्र में प्रचलित सूर्य-प्रतिमा-विज्ञान की ओर संकेत करती हैं। उसके निर्माण की सही तिथि बताना तो कठिन काम है लेकिन उसकी बनावट से उसे पूर्व मध्य काल में कहा रखा जा सकता है । वैसे बजौरा का मंदिर उत्तर भारतीय नागर शैली में कभी नवीं से लेकर 11 वीं सदी के बीच बनवाया गया जान पड़ता है ।

हिमाचल में प्रचलित सूर्य-पूजा का दूसरा प्रमुख स्थान नीरत था जहां आज भी एक प्राचीन सूर्य-मन्दिर खड़ा हुआ है । नागर शैली में बना यह छोटा सा मंदिर देखने में बड़ा सुन्दर है जो सम्भवतः गुर्जर प्रतिहार काल में कभी बनवाया गया था । इस वंश के सम्राटों में अनेक सूर्योपासक थे । उनके कुछ अभिलेखों से मालूम होता है कि वे सूर्य के प्रति विशेष आस्था रखते थे । ऐसा ही एक अभिलेख आधुनिक कुरुक्षेत्र जिले में स्थित पहेवा नामक स्थान से मिला है जिसे प्राचीन काल में पृथूदक कहते थे । यहां से मिले मिहिर भोज के काल में उत्कीर्ण एक अभिलेख में अन्य हिन्दू मंदिरो के साथ एक सूर्य मन्दिर का उल्लेख है जिसके प्रशासन के लिए घोड़ों के व्यापारियों ने टैक्स देना स्वीकार किया था । इस प्राचीन सूर्य मन्दिर का द्वार चौखट आज भी वहां देखा जा सकता है जो पुरानी नदी सरस्वती के किनारे बने आधुनिक लघु-काय सरस्वती मन्दिर में लगाया गया है । ऐसे ही अन्य सूर्य मन्दिर के अवशेष पंजाब और हरयाणा के अन्य भागों से भी मिले है जिनसे हिमाचल का पर्वतीय भाग लगा हुआ है । इस तथ्य से भी वहां प्रचलित सूर्य-पूजा का अनुमान लगाया जा सकता है ।

हिमाचल के सूर्योपासना के अन्य केन्द्रों में निर्मण्ड का उल्लेख करना आवश्यक है जहां से प्राप्त सातवीं शताब्दी ई० के एक अभिलेख में मिहिरेश्वर शिव का उल्लेख किया गया है । यह नाम वहां प्रचलित सूर्य-पूजा की ओर संकेत करता है । हो सकता है कि वहां भी एक सूर्य मन्दिर रहा हो जो बाद में ढह गया हो । इस क्षेत्र में बाद में शैव धर्म अधिक बलवान हो गया जिससे शिव-पूजा को सूर्य भगवान का सहारा लेना पड़ा । सम्भवतः इसी लिए शिव को वहां मिहिरेश्वर कहा गया है जो वास्तव में सूर्य का ही एक नाम है जिसे ईश्वर के रूप में वहां कल्पित किया गया था । इस स्थान के उत्खनन से विशाल सूर्य-प्रतिमा के मिलने की सम्भावना मालूम होती है । हो सकता है कि यहां का प्राचीन सूर्य मन्दिर ही बाद में शैव स्थान में बदल दिया गया हो, क्योंकि भारत के अन्य भागों में भी ऐसा हुआ है ।

हिमाचल के अन्य भागों से भी कुछ सूर्य-प्रतिमाएं मिली हैं । उदाहरणार्थ चम्बा के मन्दिरों में उत्कीर्ण देव-प्रतिमाओं में एक ऐसे सूर्य को दिखाया गया है जिसमें चार हाथ बने है । ऊपर के दोनों हाथों में कन्धे तक उठे कमल के फूल बने है और अन्य दो हाथ अभयमुद्रा में प्रदर्शित हैं । उसका ऊंचा किरीट, कानों के सुन्दर कुण्डल और गले में पहनाये गये हार इस प्रतिमा की शोभा बढ़ा रहे है । वेदिका पर बने भागते सात घोड़ों वाले रथों पर आसीन सूर्य देवता की यह एक अनुपम प्रतिमा है जिसे प्रतिमा-विज्ञान की दृष्टि से मैदानों की सूर्य-पूजा से जोड़ा जाना चाहिए ।

सूर्य की एक प्रतिमा हिमाचल के कांगड़ा क्षेत्र से भी मिली हैं जिसका फोटोग्राफ पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग, नई दिल्ली के ऐल्बम में लगा हुआ है । यह देवता को ललितासन में बैठा दिखाता है जिसके हाथों में कमल के फूल विशेष रूप से सुशोभित हैं । यह प्रतिमा पूर्व मध्य काल में बनी मालूम होती है क्योंकि कांगड़ा क्षेत्र के प्राप्त स्मारक प्रायः इसी काल में निर्मित हुए हैं ।

हिमाचल में सूर्य-पूजा उत्तर मध्य काल में भी जीवित रही, यह कहने के लिए मंडी में निर्मित एक शैव मन्दिर के प्रांगण में बने एक लघु मन्दिर में रखी सूर्य प्रतिमा उल्लेखनीय है जो संगमरमर पत्थर की बनी है । यह छोटी सी मूर्ति सूर्यदेव को रथ में बैठा प्रदर्शित करती है जिसमें घोड़ों का एक जोड़ा रथ को खींचते हुए दिखाया गया है । इसकी विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि सूर्य के पैर में किसी प्रकार का जूता नहीं पहनाया गया हैं । उसके पैर की सुन्दर अंगुलियां बड़ी बारीकी से दिखाई गई हैं । यह प्रतिमा भविष्य पुराण के उस कथन के आधार पर बनी जान पड़ती है जिसमें सूर्य के पैर, गुल्फ एवं उगलियों के उत्कीर्ण करने का नियम वर्णित हैं । वास्तव में मध्यकाल में और उसके बाद के समय में भारत में ऐसी ही प्रतिमायें बनने लगीं ।

आधुनिक कालीन सूर्य-पूजा में तो यही प्रतिमा विज्ञान अवशिष्ट जान पड़ता है जैसा कि भारत के विभिन्न भागों से मिलने वाली आधुनिक सूर्यमूर्तियों से मालूम होता है । वैसे प्राचीन भारत में इस प्रतिमा-निर्माण में दो विशेष परम्परायें प्रचलित थी । एक के अनुसार सूर्य के पैर को नहीं दिखाया जाना था और दूसरे के अनुसार प्रतिमा में उसका पैर तथा उनकी अंगुलियां आदि बनाई थी । पहली परम्परा उत्तर भारत में प्रचलित थी और दूसरी परम्परा दक्षिण-भारत में लोकप्रिय थी ।

सूर्य-पूजा हिमाचल के अन्य भागों में भी प्रचलित थी । स्कन्दपुराण का कहना है कि नैमिष क्षेत्र में सूर्य देवता का नाम गोलस्थ था और केदारक्षेत्र में प्रस्थापित और पूजित सूर्य को चन्द्रप्रत्यूष कहते थे । ध्यातव्य है कि ये दोनों क्षेत्र आधुनिक उत्तर प्रदेश के उतराखण्ड क्षेत्र के प्राचीन नाम थे। इससे ज्ञात होता है कि यहां पर स्थित ये दो सूर्य मन्दिर सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध थे । इसी प्रकार हरिद्वार में स्थित एक सूर्य-मन्दिर की सूचना भी इसी पुराण में मिलती है । इसका कहना है कि यहां का सूर्य देव जगतप्रसिद्ध था, उसे शिव मार्ग कहते थे, और उसकी उपासना के लिए लोग भारत के विभिन्न भागों से निरन्तर आते थे ।

स्कन्दपुराण के वैष्णव खण्ड में वर्णित बदरिकाश्रम माहात्य में भी इस क्षेत्र के सूर्य पूजा के सम्बन्ध में वर्णन मिलता है । इसमें कहा गया है कि यहां द्वादशादित्य नामक एक सौर तीर्थ स्थान था यहां के सोमकुण्ड में लोग रविवार, सप्तमी और संक्रान्ति के दिन सूर्य-देव की कृपा लेने के लिए अधिक से अधिक संख्या में आते थे । इस क्षेत्र में स्थित कुछ प्राचीन सूर्य मन्दिर आज भी विद्यमान है । इस दृष्टि से अल्मोड़ा जिला विशेष रूप से उल्लेखनीय है । हिमाचल की उपत्यकाओं में स्थित यह क्षेत्र सूर्य-पूजा का एक विशेष क्षेत्र मालूम होता है । यहां स्थित जगेश्वर नामक स्थान में दो सौर मन्दिर स्थित हैं जिनमें से एक सूर्य देव को समर्पित है और दूसरा नवग्रहों का स्थान हैं । ये मन्दिर आठवीं सदी ई० में यहां विद्यमान थे जैसा कि यहां से मिले इस समय के अभिलेख से ज्ञात होता है जिसकी सूचना हमे भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (1928-29) द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट में मिलती ह । ऐसा ही एक सूर्य मन्दिर कटरमल नामक स्थान पर भी विद्यामान है। यह स्थान अल्मोड़ा से लगभग 6 मील दूर स्थित है और यहां प्रस्थापित सूर्य-देवता को बड़ा आदित्य कहा जाता है । जिससे यह संकेत मिलता है कि यह स्थान सूर्य-पूजा का एक प्रधान पीठ था और सम्भव है कि उपर्युक्त वर्णित स्कन्दपुराण में अलिखित सूर्य यहीं स्थित रहा है । यहां की प्रधान सूर्य मूर्ति अब वहां नहीं उपलब्ध है परन्तु इस मन्दिर के एक गवाक्ष में मिली सूर्य-प्रतिमा से उसकी मूर्ति-सम्बन्धी विशेषतायें जानी जा सकती है इसमें दो हाथ दिखायें गये है जिनमें विद्यमान दो कमल के फूल बड़े ही सुन्दर ढ़ग से बनाये गए हैं ।

अल्मोड़ा से लगभग 42 मील दूर स्थित खतीरखान नामक स्थान में भी एक अत्यन्त प्राचीन सूर्य मन्दिर यहां प्रचलित सूर्य पूजा की ओर आज भी संकेत करता है । इसमें निर्मित सूर्य-प्रतिमाएं गुप्तकालीन सुन्दर प्रतिमा विज्ञान की ओर संकेत करती हैं और उसे भारतीय सूर्य-पूजा-पद्धति से जोड़ती है । लेकिन इन मन्दिरों में निर्मित शिखर उत्तर भारतीय मन्दिर की शैली में नहीं निर्मित है वरन नेपाल या हिमाचल में बने कुछ ऐसे मन्दिरों के समान हैं जिन्हें पर्वतीय मन्दिर शैली का नाम दिया जा सकता है । मन्दिर के शिखर को दृष्टि में रखने से वे एक अपना अलग महत्व रखते हैं और भारतीय मैदानों में प्रचलित किसी भी मन्दिर-शैली में नहीं रखे जा सकते हैं।

हिमालय के कश्मीर-क्षेत्र में भी सूर्य पूजा अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित थी । यहां के प्राचीन मन्दिरों एवं सूर्य देव स्थानों की सूचना राजतरंगिणी में मिलती है जो 12 वीं सदी में कल्हण द्वारा लिखा गया एक इतिहास ग्रंथ है । इसके अनुसार रणादित्य नामक एक कश्मीर सम्राट ने मार्तण्ड नामक देव के लिए सिहरो त्सिक

नामक ग्राम में एक मन्दिर का निर्माण कराया था जिसके विषय में हमें अधिक ज्ञात है कि ललितादित्य मुक्तापीड ने एक मन्दिर का निर्माण कराया था जिसे उसने मार्तण्ड सूर्य को समर्पित किया था । यह मन्दिर आधुनिक मातन नामक स्थान से कुछ ही दूरी पर स्थित है जो अब केवल खण्डहर मात्र में देखा जा सकता है । यह मन्दिर प्राचीन कश्मीर का ही नहीं वरन सम्पूर्ण भारत के भव्य देवालयों में से एक था उसके भव्य खण्ड आज भी उसकी प्राचीन विशालता की ओर संकेत करते है । उसमें एक गर्भगृह था जिसका शिखर उत्तर भारतीय मन्दिर शैली में बना हुआ बड़ा ऊंचा था, जैसा कि मन्दिर के गर्भगृह की विशालता से मालूम होता है। उसमें निर्मित अन्तराल और मण्डप, उसके द्वारा तथा उसके चारों ओर बनी ऊंची दीवार मन्दिर की अन्य विशेषताएं थी। सम्पूर्ण मन्दिर एक ऊंचे चबूतरे पर निर्मित था और इसमें कहीं से पानी लाने की भी व्यवस्था थी । द्वार के दोनों तरफ सुन्दर गंगा और यमुना की मूर्तियाँ बनी थी । मन्दिर चारों ओर सुन्दर मूर्तियों से सुसज्जित था । जिसके कुछ अवशेष चबूतरे के चारों ओर बनी मूर्तियों में अब भी देखे जा सकते है। ये मूर्तियां खंडित हैं क्योंकि इन पर आक्रमणकारियों ने समय-समय पर अत्याचार किया है। वास्तव में यह मन्दिर मध्यकाल में तोड़ा फोड़ा गया जिसके सम्बन्ध में अनेक सूचनाएं मुस्लिम इतिहासकारों के विवरण में उपलब्ध हैं । कुछ भी हो, यहां प्रचलित प्राचीन सूर्य-पूजा के आधुनिक अवशेष आज भी देखें जा सकते है । मातन नामक स्थान पर लघुकाय एक आधुनिक सूर्य मन्दिर आज भी देखा जा सकता है जहां पर निर्मित कमल और विमल नामक दो छोट-छोटे कुण्ड प्राचीन सूर्य कुण्ड की ओर संकेत करते हैं ।

कल्हण के अनुसार ललितादित्य मुक्तापीड ने ललितपुर में एक सूर्य मन्दिर का निमाणि कराया था जहां पर जयस्वामित नामक सूर्य देव की प्रतिष्ठा की गई थी । राजतरंगिणी में वर्णन मिलता है कि सम्राट सुरवर्मन द्वितीय ने इस सूर्य देव की पूजा की थी । कुछ विद्वानों की धारणा है कि यह वही प्राचीन सूर्य मन्दिर था जिसे हम मार्तण्ड नाम से जानते हैं । वैसे हो सकता है कि यहां सब से प्राचीन सूर्य मन्दिर कभी गुप्त काल में बनवाया गया हो जिसके अवशेष हमें अब नहीं मिलते है । कुछ भी हो, मार्तण्ड सूर्य यहां की पूरी घाटी का एक प्रधान देव स्थान था जिसमें पूजा करने के लिए दूर दूर से यात्री आते थे । राजतरंगिणी में उल्लेख मिलता है कि सम्राट् कलश ने कभी यहां शरण ली थी जिसके फलस्वरुप उसका जीवन बच गया था । परिणामतः बाद में उसने देवता के चरण पर एक स्वर्ण सूर्य प्रतिमा समर्पित की थी । उस सूर्य देव का स्थान वास्तव में बड़ा ऊंचा था, क्योंकि कलश के पुत्र हर्ष (1089–1101 ए० डी०) ने इस घाटी के अनके देवों को नष्ट किया, परन्तु उसने इसे नहीं तोड़ा । इससे भी उसके प्रति महान् श्रद्धा की ओर संकेत मिलता है, जिसे वहां के लोग उसके प्रति रखते थे । इस घाटी में अन्य स्थानों पर भी कई सूर्य मन्दिर बनवाये गये थे। इनमें ताम्रेश्वर सूर्य मन्दिर का उल्लेख करना आवश्यक हैं क्योंकि राजतरंगिणी में उसका उल्लेख किया गया है । इसे ताम्रस्वामिन नाम दिया गया हैं क्योंकि सम्पूर्ण प्रतिमा ताम्रधातु से निर्मित थी । विद्वानों की धारणा है कि यह मार्तण्ड मन्दिर के इलावा कोई दूसरा सूर्य मन्दिर था जिसके स्थान-विशेष के सम्बन्ध में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं हैं ।

कश्मीर में प्रचलित सूर्य-पूजा के सम्बन्ध में हमें सूर्य-प्रतिमाओं से कम ज्ञान मिलता है क्योंकि वहां की प्राचीन प्रतिमायें हमें नही मिली हैं । मार्तण्ड मन्दिर के चबूतरे पर खचित सूर्य-प्रतिमा से जो अब प्रायः खण्डित है, सौर प्रतिमा-विज्ञान पर कुछ प्रकाश डाला जा सकता है । उसके पैर में बने जूते, हाथों में दिखायें गये और कन्धे तक उठे दो कमल के फूल सूर्य-प्रतिमा के अविभाज्य अंग थे । वैसे वेदिका पर रथ को खीचने वाले भागते सात घोड़े, तथा उन्हे हांकने वाला अरुण भी सूर्य-प्रतिमा का एक प्रधान अंग था । देवता के दोनों ओर दिखाई जाने वाली उसकी दो प्रधान रानियां संज्ञा और छाया भी उसकी प्रतिमा में दिखाई जाती थी जिनके कई[1] नाम पुराणों में वर्णित हैं । मार्तण्ड मन्दिर से मिली अरुण की प्रतिमा यहां उल्लेखनीय है जिसमें वह सात घोड़ों की लगाम पकड़े हुए दिखाया गया है ।

पुराणों में भी कश्मीर के सूर्य मन्दिरों का यत्र-तत्र वर्णन मिलता है । उदाहरणार्थ स्कन्द पुराण में कश्मीर में प्रसिद्ध त्वष्टा नामक सूर्य का उल्लेख है जिसके मन्दिर स्थान एवं उसके अवशेष के विषय में हम एक दम अनभिज्ञ हैं । इसी तरह उसके निर्माण काल एव निर्माता का भी उल्लेख हमें वही मिलता है। स्कन्दपुराण में यह भी लिखा गया है कि हिमवान् में सूर्य देव को हिमापह कहते थे इस वर्णन से भी हिमालय में निर्मित किसी प्राचीन सूर्य-मन्दिर की ओर संकेत किया गया है जिसका सविस्तार वर्णन हमें कहीं भी नहीं मिलता है ।

मध्य और पश्चिमी हिमालय की तरह पूर्वी हिमाचल में भी सूर्य पूजा प्रचलित थी, जहां ब्रह्मपुत्र नदी बहती है । प्राचीन काल में इस क्षेत्र में बसे स्थान को कामरूप कहा जाता था और यहीं लौहित्य नदी बहती थी जो शायद ब्रह्मपुत्र ही है । इसकी सूचना हमें साहित्य और अभिलेख दोनो में मिलती है । इस क्षेत्र में प्रचलित सूर्य पूजा की सूचना हमें विशेष कर पुराणों में मिलती है । स्कन्दपुराण में उल्लेख मिलता है कि लोहित में सूर्य को केशवार्क कहते थे और लौहित्य नदी के किनारे स्थित उसे महातेज नाम दिया गया था । इसका यह भी वर्णन उल्लेखनीय है कि कामरूप में सूर्य को शुभङ्कर कहते थे । इन उल्लेखो से यहां प्रचलित प्राचीन सूर्य-पूजा की लोकप्रियता ज्ञात होती है और साथ ही साथ यहां पर बनाये गये प्राचीन सूर्य मन्दिरों की ओर संकेत मिलता है जिनके अवशेष हमें प्रायः अज्ञात है । लेकिन यह क्षेत्र प्राचीन सूर्य-पूजा का एक प्रधान क्षेत्र मालूम होता है क्योंकि मार्कण्डेय पुराण में एक जगह यह वर्णन मिलता है कि राज्य वर्धन नामक सम्राट एक बार सूर्य-पूजा के लिए कामरूप गया था। संभवतः यह सम्राट् हर्ष बर्धन का पितामह था जिसे हम एक अभिलेख से भी जानते हैं जिसके अनुसार वह सूर्य-पूजक था । यहां यह भी ध्यातव्य है कि इस क्षेत्र के राजाओं के साथ हर्षबर्धन के सम्बन्ध बहुत अच्छे थे अतएव इस पुराण में उल्लिखित सूर्य-पूजा की सूचना प्रायः सही मालूम होती है।

आधुनिक आसाम के कुछ स्थलों पर प्राचीन सूर्य-पूजा के पुरातात्विक अवशेष भी मिलते है। यहां तेजपुर के समीप स्थित एक ग्राम दाह् पर्बतिया के शिव-मन्दिर से एक सूर्य की प्रतिमा मिली है। इससे वहां पर प्रचलित गुप्तकालीन सूर्य-पूजा पर पड़ता है । उसमें उसे पद्मासन में बैठा दिखाया गया है उसके हाथ में दो कमल के फूल बनाये गये हैं और बगल में दो परिचारक खड़े प्रदर्शित हैं । सम्भवतः तेजपुर में ही एक विशाल प्राचीन सूर्य-मन्दिर स्थित था जिसके अवशेष वहां आज भी बचे हुए एक द्वार-चौखट के ललाटबिम्ब में मिलता है जिसके बीच में एक सूर्य की प्रतिमा तराशी गई है। यह तथ्य प्राचीन मंदिर की स्थापना का एक अच्छा प्रमाण है क्योंकि शास्त्र-ग्रंथों में मन्दिर-निमार्ण-प्रकरण में इस बात का उल्लेख किया गया है कि मन्दिर के गर्भगृह में स्थापित प्रतिमा को उसके द्वार के ललाट-बिम्ब में बनाना चाहिए । यह मन्दिर सम्भवतः ग्यारहवी-बारहवी शताब्दी में कभी बनवाया गया था क्योंकि वहां से मिली मूर्तियां इसी काल की बनी हुई मालूम होती हैं।

इस क्षेत्र में निग्रितिन्गा दूसरा स्थान था जहां प्राचीन काल में सूर्य पूजा प्रचलित थी। यह स्थान जोरहट से लगभग सोलह मील दूर है । वहां आज भी पौराणिक देवी देवताओं की पूजा के अवशेष मिलते हैं । इनमें एक पंचायतन मन्दिर का नाम लिया जा सकता है जिसमें एक लघु मन्दिर सूर्य को समर्पित किया गया है । अन्य देवो में विष्णु, शक्ति और गणेश है जिन्हें मन्दिर के अन्य कोनो पर बने लघु मन्दिरों में स्थापित किया गया है । यहां का प्रधान देवता शिव था जिसके लिए मन्दिर समर्पित है ।

गौहाटी से भी सूर्य-पूजा के अवशेष मिले हैं । यहां नवग्रहों की पूजा प्रचलित थी जिसमें सूर्य प्रधान था । यहां से एक ऐसी सूर्य-प्रतिमा मिली है जिसमें सूर्य अपने एक चक्र रथ में आसीन दिखाया गया है जिसमें सात घोड़े उसे खींचते हुए दिखाये गये है । इस क्षेत्र में प्रचलित प्रचीन सूर्य-पूजा का यह एक अच्छा उदाहरण है । हो सकता है कि यहां कभी एक विशाल सूर्य मन्दिर भी स्थित रहा हो जिसमें यह प्रतिमा प्रतिष्ठाणित थी ।

(रीडर, इतिहास विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्व विद्यालय, शिमला)

हिमाचल का वीर योद्धा

जनरल जोरावर सिंह कहलूरिया

— शक्ति सिंह चन्देल

12 दिसम्बर 1841 का दिन था। तिब्बत-विजय का स्वप्न लेने वाला वह वीर जनरल वजीर जोरावर सिंह अपनी रान पर गोली खाते ही घोड़े पर से नीचे गिर गया था। यह देखकर शत्रु ने उसे चारों तरफ से घेर लिया लेकिन इस महान् योद्धा की तलवार के निकट जो भी आया उसे मौत के घाट उतारता गया। अन्त में पीछे से शत्रु का भाला वजीर की पीठ पर लगा और छाती के पार निकल गया। भारत की सीमाएं हिमालय के उस पार तिब्बत तक पहुंचा कर यह महान् योद्धा बर्फीली चट्टानों पर सदैव की नींद सो गया। इसी स्थान पर भयभीत तिब्बती सेना ने एक भव्य समाधि तैयार कर दी यह सोच कर कि सेनापति की आत्मा दूसरे जन्म में फिर से तिब्बत पर आक्रमण न करे। कहते हैं उसकी खोपड़ी आज भी तिब्बत के एक बौद्ध मन्दिर में सुरक्षित है।

कौन था यह वीर योद्धा जिसका नाम लद्दाख व तिब्बत के गांवों, नादियों व पहाड़ों में आज दिन तक चिरपरिचित बन चुका है। इतिहास बताता है कि जोरावर सिंह बिलासपुर (कहलूर) के एक चन्देल घराने में सितम्बर 1786 ई० में पैदा हुआ। इसके जन्म पर एक पंडित ने भविष्यवाणी की थी कि बच्चे का नाम वीरता के लिये अमर रहेगा, और वह अपनी जन्म भूमि में निवास न कर दूर जगह का निवासी बनेगा। भविष्यवाणी सत्य निकली, सोलह वर्ष की आयु में जोरावर सिंह से सम्पत्ति के झगड़े पर चचेरे भाई की हत्या हो गई। इस दुःखद घटना का युवक के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा और प्रायश्चित के लिये तीर्थ यात्रा पर सदा के लिये घर छोड़ कर भाग निकला, कई सप्ताहों की यात्रा के पश्चात् वह हरिद्वार पहुंचा और मजदूरी कर जीवन यापन करने लगा। इसी समय संयोग से गलयान (वर्तमान राम बन तहसील, जम्मू व कश्मीर राज्य) के राणा जसवन्त सिंह 1803 ई० में तीर्थ-यात्रा पर हरिद्वार आये थे। उनकी यहां इस मजदूर युवक से भेंट हुई। वे उसकी बातों और काम से बड़े प्रभावित हुये और इसे अपने साथ ले आये। जोरावर सिंह स्वभाव से ही वीर था और राणा की संरक्षता में युद्ध के शस्त्रों में आसानी से दक्षता प्राप्त कर ली। किन्तु कुछ समय बीतने पर राणा के पुत्र फतेह सिंह से अनबन होने पर जोरावर चनैहनी चला आया, लेकिन वहां भी गलायान की नाराजगी के कारण वास न मिला। असहाय सी दशा में, जोरावर जम्मू पहुंचा। वह शहर के प्रवेश द्वार पर अपनी थकान दूर करने लेटा ही था कि गुलाब सिंह तवी नदी की तरफ से उसकी ओर आता नजर आया। निकट पहुंचने पर जोरावर ने उसे प्रणाम किया। गुलाब सिंह उस समय लाहौर से महाराजा रणजीत सिंह से छुट्टी लेकर जम्मू आया हुआ था जोरावर को देखकर उसने पूछा "तुम कौन हो और तुम्हारा क्या नाम है?" जोरावर सिंह ने उत्तर दिया "मेरा नाम जोरावर सिंह है।" इस पर गुलाबसिंह हंसकर बोले "जंग बहादुर एक व्यक्ति था। जब वह युद्ध भूमि से भागा तो लोगों के पूछने पर उसने उत्तर दिया कि मेरी मां जंगबहादुर थी और मुझे खिसकू के नाम से भी पुकारती थी कहीं तुम भी वैसे ही जोरावर सिंह तो नहीं?" लकिन जोरावर सिंह से उसे क्या उत्तर मिले यह तो समय ही बता सकता है। दैवगति यह कि गुलाब सिंह ने उसे अपनी सेना में सिपाही भरती कर लिया। उसकी सेवाओं से प्रसन्न हो कर निकट गांव में उसके लिए घर बनवा दिया और गृहस्थ्य जीवन में भी प्रवेश करवाया।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही उत्तरी भारत में तीन शक्तियां सिक्ख, डोगरा और ब्रिटिश अपनी अपनी सत्ता बढ़ाने की होड़ में सामने आ रही थीं। इन्होनें पश्चिमी हिमालय के क्षेत्रों पर अपनी प्रभुसत्ता जमाने के बाद लद्दाख और पश्चिमी तिब्बत की वाणिज्य क्षमता पर दृष्टि डालनी शुरू की। यहां पश्मीना-ऊन व्यापार की एक आकर्षक निधि थी जिसने पश्चिमी हिमालय की राजनीति को बहुत लम्बे समय तक प्रभावित किये रखा था। ये तीनों शक्तियां अब पश्मीना-ऊन के प्रवाह को अपने अपने प्रभावाधीन क्षेत्र की तरफ मोड़ने के प्रयत्न में थीं, और उस समय की ताक में थी कि कब पश्मीना उत्पादक इलाके (लद्दाख व पश्चिमी तिब्बत) इनकी प्रभुसत्ता में आये। एक समय इसी विषय पर मारक्विस आफ हैस्टिंग्ज ने लिखा था

1. By the possession of kumaon your Hon'ble committee is aware that we possess a direct and not difficult road into Oondes, or country producing the animal which bears the shawl-wool and into the vast region of Tartary: a circumstance which opens views-views, of great adventage to the commercial and manufacturing interests not of this country only, but also of Great Britain.

इन्हीं वर्षों में सिक्ख शासक महाराजा रणजीत सिंह संलग्न रियास्तों को अपने राज्य में मिलाता जा रहा था। जम्मू का क्षेत्र उसके अधिकार में आ चुका था। लेकिन सिक्ख सरदार की बढ़ती शक्ति और उसकी विजयों को मजबूत करने के पीछे एक और ही व्यक्ति था जिसका नाम गुलाब सिंह था। वह एक वीर सिपाही था और शीघ्र ही उसने अपने शौर्य व निष्ठा से महाराजा को प्रभावित कर दिया। गुलाब सिंह को सेना की कमान दे दी गई। शीघ्र ही उसे सिक्ख राज्य की सीमाओं को बढ़ाने में अत्याधिक सफलता मिली। उसकी सेवाओं से प्रसन्न होकर महाराजा रणजीत सिंह ने गुलाब सिंह को जम्मू क्षेत्र को जागीर के रूप में दे दिया और साथ में उसे राजा का खिताब भी प्रदान किया। तत्पश्चात् राजा गुलाब सिंह ने आसपास के बहुत से इलाके जीत कर अपने राज्य में मिलाये और 1834 ई० में महाराजा रणजीत सिंह के बाद पंजाब का प्रमुख शासक समझा जाने लगा।

राजा गुलाब सिंह के पास अच्छी तरह प्रशिक्षित व सुसज्जित सेना थी। साथ में उसे एक बहुत अच्छे निष्ठावान व योग्य सेनापति जोरावर सिंह कहलूरिया की सेवायें उपलब्ध रही जिसके कारण किसी भी नये क्षेत्र को जीतने में पीछे न रहा।

जोरावर सिंह राजा गुलाब सिंह की सेना में भरती होने के पश्चात् शीघ्र ही रियासी के किले की सुरक्षा का जिम्मेदार बन गया। जब मियां दिवान सिंह ने इस किले पर हमला किया, तो जोरावर सिंह ने इस किले की बड़ी सूझबूझ से रक्षा की। यहीं से उसने राजा गुलाब सिंह को सैनिकों को राशन के वितरण पर एक सुझाव दिया जिसके कारण एक वर्ष में एक लाख रुपये की बचत की जा सकी। इस चतुरता व स्वामिभक्ति से प्रभावित होकर राजा ने जोरावर सिंह को सप्लाईज इन्सपैक्टर नियुक्त किया। इस तरह वह राजा गुलाब सिंह के चहेते अधिकारियों में से एक बन गया।

Scanned with CamScanner

1823 ई० में राजा गुलाब सिंह ने जोरावर सिंह को किश्तवाड़ का गवर्नर नियुक्त किया गया। वहां पर कार्यकुशलता के लिये राजा ने उसे वजीर की उपाधि से अलंकृत किया। वह 1834 ई० तक किश्तवाड़ का गवर्नर बना रहा।

15 वीं शताब्दी से एक तिब्बति वंश जो कि लहासा के अधिपत्य में था लद्दाख के ऊपर अपना शासन करता आ रहा था। 1780 ई० में त्सेवांग ननगेल की मृत्यु के बाद उसका बड़ा बेटा रजेतन लद्दाख का राजा बना लेकिन दस साल के बाद उसकी भी मृत्यु हो गई और 1790 ई० में उसके भाई त्सेपाल को राज सिंहासन मिला। त्सेपाल एक मूर्ख और अज्ञानी राजा निकला। उसकी आलस्य व विलासिता के कारण कुल्लू व लाहौल के लोगों ने लद्दाख के इलाकों को लूटना शुरू कर दिया व जन्सकार के विरूद्ध युद्ध आरम्भ कर के वहां के कई किले नष्ट कर दिये। इस के एक ही वर्ष बाद मण्डी व बादन की सेना ने किश्तवाड़ के रास्ते से जन्सकार से डंगरंग तक उपद्रव मचा दिया। लेकिन इन सब घटनाओं का दोषी राजा ने अपनी प्रजा को ही माना कि वे दुश्मन का मुकाबिला करने में असमर्थ रहे। इसी बात पर मूर्ख राजा ने जनता को दण्ड देना शुरू कर दिया। इसी राजा के शासनकाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का एक साहसी कर्मचारी विलियम मूर क्राफ्ट घोड़ों और पश्मीने वाली भेड़ों के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से बाल्टीस्तान जाते लद्दाख से होकर गुजरा था। लद्दाख में एक निर्बल राजा को सत्ता में देख कर राजा गुलाब सिंह ने उस इलाके को अपने राज्य के साथ मिलाने का निश्चय किया, किन्तु ऐसा करने से पहिले उसने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सम्मति ले लेनी चाही। उसने गुप्त रूप से यह मालूम कर लिया कि इस विजय से कम्पनी को कोई आपत्ति नहीं होगी।। अंग्रेजों को, इस इलाके के बारे में बहुत कम ज्ञान था। मूरक्राफ्ट ही पहला अंग्रेज था जो लद्दाख के इलाके में पहुंचा था परन्तु वह भी अपना कार्य पूरा कर वापिस नहीं लौट सका था क्योंकि अपनी इस साहसिक यात्रा के दौरान ही उसकी मृत्यु हो गई थी। क्योंकि किसी समय में लद्दाख किश्तवाड़ के अधिपत्य में हुआ करता था अतः इस अधिकार को पुनः स्थापित करने के बहाने इस उपयुक्त समय को पाकर गुलाब सिंह लद्दाख की विधि पूर्वक विजय की तैयारियों में जुट गया। उसने इस कार्य की पूर्ति के लिए वजीर जोरावर सिंह को उत्तरदायी बनाया।

लद्दाख विजय

प्राकृतिक और भौगोलिक रूप से लद्दाख की विजय गहन बाधाओं से भरपूर थी, किन्तु डोगरा युद्ध प्रिय वीर बर्फानी व पहाड़ी युद्ध कला में निपुण थे और लद्दाख के दुर्गम स्थानों में लड़ाई लड़ने का साहस रखते थे। लद्दाख का इलाका दर्रा कराकुर्म तथा कोहिस्तान से घिरा हुआ है। पश्चिम में इसकी सीमा गिलगित्त और अस्तोर को छू रही है। लद्दाख समुद्र तल से 12,000 फुट की ऊंचाई से भी ऊपर है। बर्फ से ढके पहाड़ों की चोटियों का एक सिलसिला देखने को मिलता है। यहां की जलवायु शुष्क है और सर्दियों में तापमान शून्य से भी कम पाया जाता है। और सांस लेना तक दूभर हो जाता है। वर्ष में नौ महीने कड़ाके की सर्दी पड़ती है। इस क्षेत्र के बीच भाग से सिन्ध नदी बहती है।

कनिंघम ने अपनी छपी पुस्तक (1854) में लद्दाख को इस तरह चित्रित किया है, "लद्दाख जनसंख्या की दृष्टि से वीरानी का चित्र प्रस्तुत करता है। ऊपर से दृष्टि डाली जाये तो केवल भूरे भूरे मैदानों और बंजर पहाड़ियों का चित्र दिखाई देगा। जो बर्फ से ढका हुआ है। नैंग्सीकांक और शमूर परी की झीलें चट्टानों और रेत के किसी विस्तृत मरुस्थल में शादवल भूमियों की तरह दिखाई देती हैं। मानव-निवास का कहीं चिन्ह तक दिखाई नहीं देता और खेती बाड़ी की जमीन के बड़े बड़े टुकड़े भी किसी पिछड़ी हुई दुनियां के उजड़े से जंगल में छोटी छोटी झीलों के दृश्य प्रस्तुत करते हैं किन्तु ध्यान से देखने पर कई एक उपजाऊ खंड भी नजर आयेंगे जो शोभाशाली फसलों और भिन्न 2 प्रकार के मन्दिरों से ढके हुये हैं जिन में से अमानव

ध्वनियों का गीत दैनिक प्रार्थना और देव-स्तुति के रूप में चढ़ता रहता है। यद्यपि लद्दाख और बाल्टीस्तान भौगोलिक दृष्टि से एक ही है किन्तु उनका धर्म अलग अलग है। लद्दाख के लोग बुद्धमत के अनुयायी हैं किन्तु बाल्टीस्तान के लोग अधिकतर मुसलमान हैं।

लद्दाख को आवागमन के साधन और रास्ते नाम मात्र के थे। आज भी ये साधन विश्वसनीय नहीं। किन्तु इन सभी बाधाओं के होते हुये भी वजीर जोरावर सिंह जुलाई 1834 को 10,000 डोगरा सैनिकों सहित लद्दाख को विजय करने किश्तवाड़ से आगे बढ़ा। वह कश्मीर के रास्ते को नहीं अपना सका क्योंकि उस समय कश्मीर सिक्खों के अधिकार में था। डोगरा सेना तोपखाना, पदातिसेना व अश्विसेना से संगठित थी।

डोगरा सेना मड़वा, बाड़धन और जन्सकार की दुर्गम पहाड़ियों को पार कर पुरग पहुंची। 16 अगस्त, 1834 ई० को जोरावर सिंह को पहली बार सांकू के स्थान पर पांच हजार लद्दाखी सेना का सामना करना पड़ा इस सेना का नेतृत्व स्टोग के एक मन्त्री मांगल द्वारा किया जा रहा था। मांगल दृढ़ स्थिति में था तथापि उसके पीछे हटने का एक ही मार्ग था जो नदी के साथ से होकर निकलता था। जोरावर सिंह ने इस मार्ग पर नदी के दोनों किनारों पर अपने सैनिक तैनात कर दिये और इस प्रकार लद्दाखी सेना का पीछे लौटना रोक दिया। डोगरा सेना भरकम तोड़ेदार बन्दूकों से गोलियों की बोछार पड़ने पर भी पहाड़ी की तरफ आगे बढ़ती गई। अन्त में दिन भर की लड़ाई के बाद लद्दाखी सेना उखड़ पड़ी। इस लड़ाई में छः डोगरा सैनिक मारे गये जबकि दुश्मन के तीस सैनिक मारे गये। उस रात डोगरा सेना पहाड़ी के उत्तरी किनारे सररूकी और दूसरे दिन सूरू पहुंच कर अपना पड़ाव जमाया व एक महीने तक नहीं रहे। इसी समय के भीतर वहां एक दुर्ग का निर्माण किया और शकगार के किले को अपने अधिकार में लेकर स्थिति को और भी दृढ़ कर लिया। जोरावर सिंह को इस संघर्ष के दौरान भविष्य में आने वाली कठिनाईयों का अच्छी तरह आभास था। उसने खाद्य पदार्थों का समुचित व प्राप्य मात्रा में पाने के लिए अपने सैनिकों को फसलों को नष्ट न करने के दृढ़ आदेश दिये। ऐसे चतुर व नीतिकुशल उपायों से डोगरा सेना के सामने आहार की कोई समस्या न रही। साथ में सूरू के कृषक वर्ग भी डोगरों के संरक्षण में आकर उनका अधिपत्य मानने लगे।

सितम्बर, 1834 मे डोगरा सेना सूरु के किले में 35 सैनिक छोड़ व रास्ते में लंगकारत्से व मांजी को अपने अधिकार में करती हुई पुश्क्यून के मैदान में पहुंची। यहां पर लद्दाखी सेना प्रतिरक्षी की स्थिति में एकत्रित थी। यहां पर दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ जिसमें लद्दाखी सेना का कप्तान अचानक गोली लगने से मारा गया। इस पर लद्दाखी सेना के हौंसले टूट गये और वह युद्ध स्थल छोड़ भाग निकली। इन्होंने पुश्क्युन के पुल को पार करने के बाद उसे नष्ट कर दिया, किन्तु डोगरा सेना इसका पीछा करती रही और खालों द्वारा नदी को पार करके दुश्मन का पीछा किया।

बहुत से लद्दाखी सैनिक मारे गये कई कैदी बना लिये गये। जब डोगरा सेना पुश्क्युन पहुंची तो वहां का किला खाली पाया गया। इस का सरदार सौड के किले कि तरफ भाग गया था। जो कि कारगिल के दक्षिण में है। सौड किले पर दस दिन तक तोपखाने से गोलाबारी करने के पश्चात् यह किला भी डोगरा सेना के हाथ लगा इस तरह जनरल जोरावर सिंह ने थोड़े ही समय में लद्दाख के महत्वपूर्ण भागों पर अधिकार कर लिया।

इस समय तक सर्दी का मौसम शुरू हो चुका था। जोरावर सिंह का विचार था कि कुछ आवश्यक प्रबन्ध करके वह किश्तवाड़ चला आये। उसने सेना के खर्चे को पूरा करने के लिये किसानों पर कुछ कर लगाये और लद्दाख के राजा से पन्द्रह हजार रुपया युद्ध कर मांगा। राजा ऐसे सुनहरे मौके की ताक में था किन्तु बाद

मे रानी जीजी के मना करने पर इस सन्धि की शर्त को मानने पीछे हट गया । डोगरा पत्र वाहक को पुल पर से नीचे फेंक दिया गया । इसके अतिरिक्त लद्दाखी सेना ने पीछे के रास्ते से डोगरों पर आक्रमण कर दिया । जो आहत बन्दी बना लिये गये उन्हें दरिया में फेंक दिया गया । डोगरा सेना को विवश हो कर लंगकारसते तक पीछे हटना पड़ा । इसी बीच लद्दाखियों ने सख्त सर्दी का लाभ उठाकर डोगरों पर और हमला करना चाहा, लेकिन डोगरा जनरल इन खतरों को भली प्रकार समझता था । तथापि इस से पहिले कि लद्दाखो सेना उन पर हमला करे, डोगरा सेना ने उन पर हमला कर दिया । लद्दाखियों की बड़ी हानि हुई । चार सौ लद्दाखी सैनिक भागते हुए बर्फ के पुल पर से नदी में बह गये और एक सौ सैनिक कैदी बना लिये गये । लद्दाखी-सेना को पीछे हटना पड़ा और डोगरा सेना फिर से पुश्क्यून तक जा पहुंची । यहां पोरग का सरदार डोगरों से जा मिला और उनका पथ प्रदर्शन करने लगा । भयभीत होकर लद्दाख के राजा त्सेपाल ने जोरावर सिंह को सन्धि का प्रस्ताव भेजा । समझौता के लिये जोरावर सिंह की भेंट त्सेपाल से बसगो में हुई । त्सेपाल ने पचास हजार युद्ध व्यय के रूप में और बीस हजार वार्षिक कर के रूप में देना स्वीकार किया । इस प्रकार लद्दाख पहली बार डोगरा राज्य का भाग बना ।

चार महीने लेह में ठहरने के बाद वजीर जोरावर सिंह यहां से लौट कर लामायूरू आया । लद्दाख की विजय पूर्ण हो चुकी थी लेकिन कश्मीर के सिक्ख गवर्नर मियां सिंह ने इसमें ईर्ष्या के मारे विघ्न डाल दिया । उसने लद्दाख के राजा को समझौते से पीछे हट जाने के लिये प्रेरित किया । सौड के सरदार ने जिसने मियां सिंह से सम्बन्ध स्थापित कर दिये थे विद्रोह कर दिया और सूरू के किले पर नियुक्त किये सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया । जोरावर सिंह सूरू की ओर बढ़ा और विद्रोहियों को पराजित करके व उनके नेताओं को फांसी पर लटका दिया । इस के बाद जोरावर सिंह जंस्कार आया । यहां के राजा ने साढ़े तीन रुपये प्रति घर के अनुसार कर देने का समझौता किया । यहीं पर जोरावर सिंह ने जम्मू जाकर गुलाब सिंह से मिलने का निश्चय किया ।

महाराजा गुलाब सिंह ने आज्ञा दी कि जोरावर सिंह का प्रेम पूर्ण स्वागत किया जाये । जब जोरावर सिंह दरबार में आया तो महाराजा गुलाब सिंह उठ कर उससे गले मिले । यह ऐसा गौरव था जिसे महाराजा केवल विशिष्ट वीरों को ही दिया करते थे ।

1835–36 में लद्दाख के राजा त्सेपाल ने कश्मीर के सिक्ख गवर्नर मियां सिंह के प्रभाव में आकर विद्रोह कर दिया । डोगरा राजदूत मुन्शी दया राम को पकड़ कर मार डाला गया । व्यापार के सारे मार्ग बन्द कर दिये विद्रोह का समाचार मिलते ही जोरावर सिंह लेह की तरफ चल पड़ा । उसके पहुंचते ही त्सेपाल भयभीत हो उठा और क्षमा के लिए उसके पावों पर गिर पड़ा । राजा त्सेपाल जोरावर सिंह का विश्वास खो चुका था, अतः उसे स्टोग की जागीर दे कर राज्य की बागडोर उसके सेनापति नौदोब स्टनजन के हाथों में दे दी । इसी समय के दौरान डोगरा जनरल ने लेह के शहर के बाहर एक किला भी बनवाया और वहां तीन सौ सैनिक नियुक्त किये ।

लद्दाख विजय प्रत्यक्ष रूप से पूर्ण हो जाने के बाद जोरावर सिंह फिर जम्मू को रवाना हो गया । वह जस्कार से होता हुआ बाल्डे पहुंचा जिसे उसने अपने अधिकार में लिया और चतुरगढ़ के किले में बीस सैनिक तैनात किये । किन्तु जम्मू पहुंचतें ही समाचार मिला कि लेह के सूबेदार नौरोब स्टनजन केने विद्रोह कर दिया इस बार जनरल जोरावर सिंह तीन हजार डोगरा सैनिकों को लेकर लेह की तरह चल पड़ा । नौरोब जोरावर सिंह की सेना को आते देख लेह से भाग उठा परन्तु डोगरा सैनिकों ने उसका पीछा किया और स्पिति में टाबो

गांव के पास उसे पकड़ कर कैद कर लिया गया । नौरोब को पदच्युत कर दिया गया और विद्रोहियों को उचित दण्ड दिये गये । इस बार वजीर के मियां सिंह को लद्दाख का उच्च अधिकारी बनाये और उसकी सहायता के लिये अपनोरगजन को नियुक्त किया । राजा त्सेपाल को नाम मात्र का राजा बनाये रखा । शीघ्र ही वजीर जोरावर ने लद्दाख के शासन प्रबन्ध को ठीक कर लिया और अपनी शक्ति को और भी संगठित करने में सफल हो गया ।

स्कार्दू का जम्मू के साथ मिलाना

जनरल जोरावर सिंह ने लद्दाख में स्थिति को शक्तिशाली बनाने के बाद अपना ध्यान बाल्टीस्तान की तरफ देना चाहा, तथापि इस के लिये महाराजा गुलाब सिंह ने महाराजा रणजीत सिंह से आशीर्वाद लेना चाहा बाल्टीस्तान में तीन छोटे-छोटे राज्य थे—स्कार्दू, गिलगिट और हुंजा । स्कार्दू की सरकार चीन के अधिपत्य को मानती थी और चीन के पास उस समय एक लाख बीस हजार सेना थी । महाराजा रणजीत सिंह को डर था कि डोगरा सेना का चीन के सम्राट से सीधा टकराव न हो जाये अतः सिक्ख महाराज ने इस कदम को लेना उस समय के लिये स्थगित रखा । 1839 में महाराजा के स्वर्ग सिधाने पर उनका लड़का खड़क सिंह सिंहासन पर बैठा । वह एक अंजान शासक था और वास्तविक शक्ति कंवर नौनिहाल सिंह के हाथ में आ गई थी । कंवर अंग्रेजी सरकार के पंजाब में हस्तक्षेप के विरूद्ध था । वह नेपाल के साथ सीधे सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था किन्तु मार्ग में बर्तानवी भारत था । अतः उसने हिमालय के रास्ते से नेपाल के साथ सम्बन्ध पैदा करने का निश्चय किया । इस योजना को पूरा करने के लिये मण्डी कुल्लू, और स्कार्दु आदि राज्यों को साथ मिलाया जाना आवश्यक था । दुर्भाग्यवश इस योजना को पूरा करने से पहिले ही कंवर नौनिहाल सिंह की मृत्यु हो गई । उधर 1841 ई० तक महाराजा गुलाब सिंह अपने आपको सिक्ख दरबार का एक उपग्रह समझता था, परन्तु महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् सिक्ख राज्य में आपसी कलह के कारण अब गुलाब सिंह स्वतन्त्र निर्णय लेने लग गया था । इन परिस्थितियों में अवसर मिलते ही उसने जनरल जोरावर सिंह को बाल्टीस्तान पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी ।

उस समय अहमदशाह स्कार्दु का शासक था । उसका अपने लड़के मुहम्मदशाह से सिंहासन को प्राप्त करने की होड़ में झगड़ा चला आ रहा था । मुहम्मदशाह ने सिंहासन प्राप्त करने के लिये जनरल जोरावर सिंह से सहायता मांगी । जनरल ऐसे अवसर की ताक मे था और बहाना मिलते ही वह डोगरा सेना को, जिसमें पांच हजार लद्दाखी सैनिक भी थे, लेकर स्कार्दु पर आक्रमण करने चल पड़ा । कार्गिल दरास और सुरु को संयोजित करते हुए सपरीखट के पहाड़ को पार कर डोगरा सेना चेचेथंग पहुंची और स्कार्दु की तरफ बढ़ने लगी । राजा अहमदशाह को डोगरा सेना के आने का समाचार मिलते ही अपने बीस हजार सैनिकों को लेकर मरोल गांव से कोई तीन मील ऊपर एक ऊंचे मैदान में आ गया । इस मैदान पर पहुंचने का कोई दूसरा मार्ग न था आज भी यह मैदान थामोखोनईथंग अर्थात् युद्ध-भूमि के नाम से प्रसिद्ध है । इस के ऊपर स्कार्दु की सेना ने अपने मोर्चे बना लिये । दर्रा वांको को भी जांहां से रास्ता शिकम नदी से मैदान की तरफ आता था बन्द कर दिया गया । इन परिस्थितियों में जोरावर सिंह का आगे बढ़ना असम्भव हो गया । दो बड़ी कठिनाईयां सामने थीं— एक नदी और दूसरे ऊपर से कड़ाके की सर्दी । नदी पर पुल बनाना दुश्मन की गोली के निशाने से दूर न था । दो सप्ताह बीत गये, खाद्य पदार्थों की कमी होती जा रही थी । अन्त में, एक दिन रात के अन्धेरे में कर्नल मैहता बस्ती राम के नेतृत्व में नदी के उस जमे हुए भाग में लकड़ी की बलियां फसां कर हिम की टुकड़ों के जो बह कर आ रहे थे रुकने दिया । कुछ ही समय में नदी के खुले भाग में बर्फ की एक पक्की सड़क सी तैयार हो गई । प्रातः काल तक बस्ती राम कुछ सैनिकों को साथ लेकर शत्रु पर हमला करने में सफल हो गया । अचानक के इस हमले से शत्रु के पैर उखड़ गये और इस तरह दर्रा वांको जोरावर सिंह के अधिकार में आ

गया । इस के पश्चात् उसने मैदान पर हमला बोल दिया और दुश्मन को आड़े हाथ लिया। मैदान थामोखोन डोगरों के हाथ में आ गया । बाल्टीस्तान की विजय के लिये यह युद्ध निर्णयात्मक था । तत्पश्चात डोगरा सेना ने हुजागोंड को विजय किया जिस से स्कार्दु को जीतने में कोई कठिनाई शेष न रही ।

डोगरा सेना ने स्कार्दु पहुंचने पर राजा अहमंदशाह को किलाबन्द पाया । किले के ऊपर पहुंचने के लिये कोई रास्ता नहीं दीख रहा था । किले के ऊपर चट्टान के ठीक चोटी पर एक छोटा सा मैदान था जिस पर पहुंचने के दो रास्ते थे : एक किले के अन्दर से और दूसरा पहाड़ी के पश्चिम से जहां थोड़े से सैनिक तैनात करने पर भी डोगरा सेना को आसानीं से रोक सकते थे । इस किले को उस समय अपराजित समझा जाता था । जोरावर सिंह ने इस पर घेरा डाल दिया । दस दिन के घेरे से भी कोई प्रभाव दृष्टिगोचर न आया । अन्त में, जोरावर सिंह ने एक चाल चली । राजा शेरअली खां के द्वारा अहमंदशाह को जोरावर सिंह के सामने आने के लिये बुलाया गया । । किले का जलाशय खत्म हुआ जा रहा था। विवश होकर अहमंदशाह बाहर आ गया । उसे कैद कर लिया गया और इस तरह रक्त बहाये बिना स्कार्दु पर जम्मू का अधिकार हो गया । उससे सात हज़ार रुपये वार्षिक कर जम्मू को देना तय किया गया। इसके पश्चात् गिलगिट और हुंज़ा के क्षेत्र भी जम्मू में मिला लिये गये ।

पश्चिमी तिब्बत पर आक्रमण

अब तक जम्मू राज्य का प्रादेशिक अधिकार तिब्बत की सीमाओं तक पहुंच चुका था । महाराजा गुलाब सिंह ने इन क्षेत्रीय उपलब्धियों से प्रसन्न होकर जोरावर सिंह की आक्रमणकारी नीतियों के प्रस्ताव को स्वीकृति दे दी । जोरावर सिंह की दृष्टि अब पश्चिमी तिब्बत पर लगी हुई थी जिसे विजय कर लेने से उसका विचार था कि वह डोगरा राज्य की सीमाएं नेपाल तक पहुंचा सकेगा और दोनों राज्यों में मित्रता और सीधे पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित कर सकेगा । दूसरे उसे पश्चिमी तिब्बत में बहुचर्चित सोने की खानों और समृद्ध बौद्ध-मन्दिरों को अधिकार में ले लेने की भी सम्भावना थी । तीसरे वह चाहता था कि पश्मीना का सारा वाणिज्य-प्रवाह लद्दाख से होकर कश्मीर के रास्ते से हो । थाम्पसन जो कि उस समय उत्तरी पश्चिमी प्रान्त का सचिव था, न लिखा है—

1. The more immediate object of this extention of sikh operation to the castward is to monopolise the Pasham trade and by preveting a particle of the shawl-wood intering zashahr from chinese Tartary to force the article to cashmere market alone.

(कश्मीर में उस समय जम्मू सरकार की दिलचस्पी इस कारण थी क्योंकि इस प्रान्त के डोगरों के अधिकार में आने की सम्भावनायें बनती जा रही थी ।

पश्चिमी तिब्बत पर आक्रमण करने का यह बहाना लिया गया कि रोथोक और गरकोट के प्रान्त कुछ शताब्दी पहिले लद्दाख के अधीन थे, अतः चीनी गवर्नर को यह लिख भेजा गया कि इन प्रान्तों को डोगरा सरकार को वापिस किया जाये विशेष उत्तर न पाकर जोरावर सिंह ने गरकोट पर हमले की त्यारियां शुरू कर दीं । यहां का गवर्नर निर्बल था तथापि भय के मारे पांच घोड़े और पांच खच्चरें उपहार के रूप में वजीर की सेवा में भेजीं । वजीर ने इस तुच्छ उपहार को अपना अपमान समझा और अप्रैल 1841ई0 में रोतिक व गरकोट के प्रांतो पर हमला कर दिया । सेना को दो भागों में बांटा गया—एक को मियाँ राय सिंह की कमान में रूपशी वानले के मार्ग से भेजा और दूसरा स्वयं वजीर के साथ चांगला दर्रे व पैंगगौंग झील के दक्षिणी रास्ते से लाया गया । रोदोक पहुंचने से पहले ही ये दोनों सेनायें मिल गई और रोदोक पर आक्रमण कर दिया गया। 'फतेह शिवजी बटालियन

(वर्तमान 4 JAK) प्रसिद्ध मंतलाई के झंडे को लड़ाई के दौरान 30 मई 1841 के दिन को अपने अधिकार में ले लिया । (आज भी यह झंडा JAK के रैजिमैंटल सैंटर, ग्वालियर में विद्यमान है व प्रतिवर्ष 30 मई को 'मंतलाई-दिवस' को धूमधाम से मनाया जाता है । कुछ ही सप्ताहों में जोरावर सिंह ने रोदोक और गरकोट के प्रान्तों को अपने अधिकार में ले लिया।

गरकोट से चलकर डोगरा सेना बिना किसी रुकावट के मिस्सार पंहुची । यहाँ के लोगों ने बिना किसी रुकावट के डोगरा सरकार की अधीनता स्वीकार कर ली । यहां पर शरटोकपो नाले के किनारे जोरावर सिंह अपनी सेना का पड़ाव लगाये आराम कर रहा था कि रात की असावधानता में पोसंग सीमा नियुक्त लहासा की सेना ने वजीर की सेना पर हमला कर दिया । किन्तु वजीर ने सेना को शीघ्र ही संभाल लिया । कुछ समय के घमासान युद्ध के पश्चात दुश्मन रणस्थल से उखड़ गया । तत्पश्चात जोरावर सिंह यहां से आगे बढ़ा और सेना के साथ झील मानसरोवर पहुंचा । यह हिन्दुओं का एक पूजनीय व पवित्र स्थान है । पौराणिक ग्रन्थों के अनुसार राजा मान्धाता ही केवल मात्र राजा हुआ जिसने सारे स्थान पर अधिकार किया हो किन्तु जोरावर सिंह पहला व्यक्ति था जिसने झील मानसरोवर के चारों ओर के इलाकों को व पोरांग के प्रांत को अपने अधिकार में किया ।

आगे बढ़ती हुई डोगरा सेना की विजय का समाचार मिलते ही लहासा ने जनरल पी0शी0 की कमान में जोरावर सिंह को रोकने के लिये सेना भेजी । जब वह तकलाकोट पहुंचा और जोरावर की शक्तिशाली सेना को बढ़ते देखा तो भय के मारे मयूम दर्रे के पास पीछे हट गया और लहासा से मदद के लिये और अधिक सेना मांगी । 6 सितम्बर 1841 ई0 को जोरावर सिंह ने मामूली से मुकाबले में ही तकलाकोट के ऊपर अधिकार कर लिया और शीघ्र ही वहां पर एक किले का निर्माण किया तथा कर्नल बस्ती राम की अधीनता में तीन सौ सैनिक रखे । इस प्रकार जनरल जोरावर सिंह का पश्चिमी तिब्बत की विजय का बहुत समय से संजोया स्वप्न साकार हुआ ।

अब जोरावर सिंह ने नये प्राप्त किये क्षेत्रों में अपनी शक्ति को संगठित करना आरम्भ कर दिया । उसने हर चौकी के उपर अपने डोगरा सैनिक तैनात कर दिये और रोदोक, गरकोट, चूरित, चुमूरती, करदाम, तीर्थपुरी और तकलाकोट जैसे स्थानों पर युद्धावश्यक महत्ता के किले बनवाये । मार्गों का नवनिर्माण किया गया और तिब्बत के स्थानीय अधिकारियों को आदेश दिये गये कि वे प्रजा को डोगरा-राज्य के पक्ष में लानें के लिये प्रचार करें तथा पश्म का सारा व्यापार लद्दाख से ही किया जाये । जिन लोगों ने बुशहर को इस पश्म भेजने का प्रयत्न किया उन्हें भारी दंड दिये गये ।

तकलाकोट से कुमाऊं और नेपाल की सीमा केवल-पन्द्रह मील की दूरी पर थी । नेपाल के महाराजा ने विश्वस्त रूप से एक सौ बीस सैनिक वजीर की सेवा में भेजें और कहा कि अब जम्भ और नेपाल की सरकारों के बीच में गुप्त रूप से एकता के सम्बन्ध विद्यमान हो जाने से भविष्य में दोनों सरकारों को एकता और संगठन की प्रथाओं का पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिये । उधर बर्तानियां सरकार डोगरा-सिक्ख-नेपाली के आपसी मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को उभरते देख चिन्तित हो बैठी । स्टिर जार्ज रसल क्लार्क जो लुधियाना में पोलिटिकल एजैंट के पद पर नियुक्त था, ने महाराजा शेर सिंह (लाहौर) को 28 सितम्बर 1841 को सिक्खों के नेपाल के साथ सीधे सम्बन्ध हो जाने के रूप में किसी भी मिथ्या बोध के लिये लाहौर सरकार को जिम्मेदारी से मुक्त न समझा जायेगा ।

इस समय तक जनरल पी०शी० की प्रार्थना पर लद्दाख ने दस हजार सैनिक सहायता के लिये भेज दिये थे। इस सेना के साथ एक शक्तिशाली तोपखाना भी था और नौ महीने के लिये प्राप्त खाद्य पदार्थ थे। अब तक सर्दी भी पराकाष्ठा पर पहुंच चकी थी। मयूम दर्रा बर्फ से बन्द हो चुका था और समझा जाने लगा था कि तिब्बति-सेना अब बसन्त-ऋतु तक कोई हमला नहीं कर सकेगी। किन्तु तिब्बतियों ने एक नया रास्ता खोज निकाला और तकलाकोट पर नवम्बर में घेरा डाल दिया। करदाम के किले पर भारी आक्रमण किया गया और डोगरा सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया। तकलाकोट में कर्नल बस्ती राम के अधीन सैनिकों की टुकड़ी को शेष सारी डोगरा सेना से अलग-थलग कर दिया गया। इस समय जोरावर सिंह झील मानसरोवर के निकट तीर्थपुरी में अपना कैम्प लगाये हुये था। उसने समाचार मिलते ही 7 नवम्बर को नोनो सनम की कमान में तीन सौ सैनिक करदाम के लिये रवाना किए किन्तु इस टुकड़ी को भी तिब्बतियों ने बरबाद कर दिया 19 नवम्बर को गुलाम खान के अधीन छ सौ सैनिक भेजे लेकिन उनका अन्त भी पहले ही की तरह हुआ। इस प्रकार डोगरा सेना संकट की परिस्थितियों में आ फंसी। इस समय जम्मू या लाहौर से किसी प्रकार की सहायता का पहुंचना आशा से दूर था.। राजा गुलाब सिंह पेशावर में विद्रोहियों को कुचलने में बर्तानियां सरकार की सहायता में व्यस्त था। लेह-दुर्ग का सेनापति मियां मगना समाचार पाकर अपनी डोगरा सेना को लेकर झील मानसरोवर की तरफ बढ़ता आ रहा था किन्तु सारे दर्रे बर्फ से बन्द थे और उसे विवश होकर पीछे हटना पड़ा। ऐसे समय जनरल जोरावर सिंह को पीछे हटने के लिये कोई दूसरा रास्ता भी न था और तिब्बतियों की संख्या भी तीन गुना भारी थी। अब उसने नैपोलियन के सिद्धांत 'बचाव का सर्वोत्तम उपाय हमला' को अनुसरण करने का निश्चय किया। डो-यो के स्थान पर जनरल जोरावर सिंह अपनी सेना के साथ 10 दिसम्बर को क्रुद्ध शेर की तरह दुश्मन पर टूट पड़ा। दोनो ओर से गोली चलनी शुरू हो गई। तीन दिन तक घमासान युद्ध चलता रहा। दोनों सेनाओं ने खूब पौरुष दिखाया। तीसरे दिन जोरावर सिंह के सिपाहियों ने भारी हमला किया। लहसा की सेना के पांव उखड़ने ही वाले थे कि जोरावर सिंह अपने सैनिकों का साहस बढ़ाने के लिये स्वयं युद्ध में शामिल हो गया और अपने सैनिकों को आगे बढ़ाने लगा। वीरता के वैभव का अन्त निकट आ चुका था। जोरावर सिंह को शत्रु की गोली लग चुकी थी फिर भी वह अपने बायें हाथ से तलवार के साथ शत्रु का नाश किये जा रहा था। पीछे से पीठ पर शत्रु का भाला लगा और छाती को चीरता हुआ बाहर निकल गया और वीर जनरल वहीं चित हो गया।

जोरावर सिंह की मृत्यु के बाद डोगरा सेना पर भारी कष्ट आ पड़े। उसके सात सौ सैनिकों को बन्दी बना कर लहासा ले जाया गया जबकि बहुत से सैनिक जो वापिस लौट रहे थे ठंड और बिमारी से रास्ते में ही खत्म हो गये। केवल कर्नल बस्ती राम व उसकी बची सेना नैपाल सीमा से होकर अलमोड़ा पहुंची। उसे रास्ते में भूख और ठंड के मारे बिना कपड़ों से बर्फीले पहाड़ पार करने पड़े। मुट्ठी भर दानों के लिये सैनिकों ने अपने हथियार व हैलमैंट लोगों को बेच डाले। बहुत से सैनिक तो दिल दहला देने वाले जख्मों से पीड़ित थे। इस सेना का हृदय विदारक दृश्य देखकर लगता था मास्को से लौटते समय की नैपोलियन की कहानी यहां फिर से दोहराई गई हो।

लद्दाखियों ने तिब्बतियों की सहायता से फिर से विद्रोह कर दिया था लेकिन महाराजा गुलाब सिंह ने दिवान हरिचन्द और रत्नु की कमान में छ हजार सैनिक भेज कर इस विद्रोह को कुचल डाला।

जनरल जोरावर सिंह की वीरता भारत के इतिहास में अमिट बन चुकी है। यद्यपि उसकी सेना आज के बर्फानी कपड़ों और हथियारों से सुसज्जित नहीं थी फिर भी डोगरा सैनिकों ने इन आक्रमणों में अपनी युद्ध कुशलता व शौर्य का प्रमाण दिया है। जोरावर सिंह की युद्ध निपुणता में राजनीतिक बुद्धिमता का समन्वय था। गुलाब सिंह की सेना में वह एक ऐसी परम्परा व प्रशिक्षण की भावना दे गया जोकि आज भी 'जम्मू व कश्मीर राईफल्ज' की एक गौरवमयी संपदा समझी जाती है।

लोक नाटक — परम्परा और सम्भावना

—कैलाश आहलूवालिया

भारत में लोक नाटक की बहुत प्राचीन परम्परा है। भिन्न भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न ढंग से लोक नाटक खेले जाते हैं। मेलों और अन्य प्रकार के उत्सवों पर लोग एक स्थान विशेष पर एकत्रित होते हैं। और साधारण से रंगमंच पर अपूर्व ढंग से नाटकीय मुखोटे पहन अपने अभिनय से जन-जन के मन में आह्लाद की लहर दौड़ा जाते हैं। प्राचीन काल से ऐसे अपूर्व चितित नाटकों का प्रचलन रहा है। गली गलियारों खलिहानों चोपालो और घर के आंगन में बिना किसी आडम्बर के अभिनय किया जाता है। लोक वाद्यों और नृत्यों के संग एक अद्भुत कथा मुखर हो उठती है–ऐसी कथा जो पुस्तकों में लिखित नहीं मिलती केवल लोगों के अवचेतन मन से उपजती है और लोक कला की वेश भूषा पहन रंग मंच पर परी सी उतर आती है।

कुछ लोगों के अनुसार लोक नाटक केवल ऐसे प्रक्षेकों के लिए हैं जो फांसी के स्तर से ऊपर नहीं उठते। इसलिए इनके नाटकों का तथाकथित सभ्य समाज से कोई सम्बन्ध नहीं पर ऐसा सोचना नितान्त गलत है। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो इन्हें केवल विदूषकों के हल्के मजाक भरे खेल मात्र ही मानते हैं। ऐसा मानना भी सही नहीं है।

योरूप में भी ऐसे नाटकों की परम्परा है। इंगलैंड में "मम्मिंग नाटक, खेले जाते हैं ये नाटक विभिन्न रूपों में "गैम्ज", "हारवैस्ट होम" तथा "क्रिसमिस" पर अभिनीत होते हैं। जैसे—("तलवार नृत्य", मोरिसनृत्य" और प्रेम नृत्य" इन नाटकों का मुख्य विषय मृत्यु और मुक्ति रहता है। अब इनमें सामयिक विषयों का भी समावेश होने लगा है। भिन्न-भिन्न स्थानों पर इन्हें स्थान विशेष का रंग दे दिया जाता है इससे विषय में सार्वभौमिकता आ जाती है।

लोक गीतों और लोक नृत्यों की भांति, लोक नाटकों के प्रारम्भ का भी कोई ठौर ठिकाना नहीं पर निस्सन्देह यह कहा जा सकता है कि ये नाटक एक अलग धारा के रूप में सर्वदा खेले जाते रहे हैं। अपूर्व चिन्तित ये नाटक जन-जन के अवचेत मन को शब्द देते रहे हैं।

योरूप तथा विश्व के अन्य देशों की भांति भारत में भी एक अलग रूप में पनपता रहा इसमें एक विचित्र प्रकार का वैविध्य रहा अनेकों प्रकार के विषय इसमें प्रवेश करते रहे और भिन्न-भिन्न शैलियों में इन्हें प्रदर्शित किया जाता रहा यह धारा साहित्यिक प्रवाह से एक दम विलग रही। और मजे की बात यह है कि जैसे शरीर में रक्त समान रूप से बहता रहता है अबाध और स्वतन्त्र उसी तरह से देश के लगभग सभी प्रदेशों में स्वतन्त्र रूप से लोक नाटक पल्लवित और पुष्पित होता रहा।

उत्तर प्रदेश में राम और कृष्ण लीलाएं धार्मिक गतिविधियों का एक अटूट अंग रही हैं। भिन्न-भिन्न मंडलियां गांव-गांव जाकर साधारण लोगों के बीच राम लीला और रासलीला करती हैं। इनमें कई तरह के तत्व सम्मिलित

Scanned with CamScanner

हैं—जैसे स्वांग नृत्य, संगीत, चित्रकला और झांकियां भारत के प्राचीन रीतियों, विश्वासों और धार्मिक परम्पराओं से ओत-प्रोत लोक नाटक कदम-कदम आगे बढ़ता रहा है और सामाजिक जीवन की सजीव झांकियां प्रस्तुत करता रहा है सारे देश को एक सामान्य लड़ी में पिरोये रखने का क्षय भी लोक नाटक को जाता हैं प्रान्तीय और भाषा सम्बन्धी सीमाएं भी लोक नाटक ने तोड़ी हैं, मध्यकालीन कलाओं जैसे–संगीत , नृत्य, चित्रकला झांकियां और साजसज्जा का सामूहिक रूप भी इसी ने जन-जन के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

लोक नाटक की सहायता से हम भारत के नाटक के इतिहास की खोई हुई कड़ियों को फिर से जोड़ने का प्रयास करते हैं, शास्त्रीय नाटक की परम्परा हमें लोक नाटक से प्राप्त होती है और साथ ही मध्ययुगीय नाटक के विविध नाटक का पूर्ण चित्र भी यही प्रस्तुत करता है लोक नाटक में अस्थानीय रंगमंच बहु दीर्घ रंगमंच कई दृष्यों वाली रंग सज्जा, विशिष्ट शैली में अभिनय, वेशभूषा, सूत्रधार की उपस्थिति, कोरस विदूषक और दूसरे चरित्र, गीत और नृत्य का अत्यधिक प्रयोग अभिनेता और प्रेक्षक में तारतम्य, ढीली कथा वस्तु जिसमें विवरण और नाटकीयता का सम्मिश्रण और तत्काल अभिनय में स्वतन्त्रता ये सब बातें पाई जाती हैं और यह सब कुछ लोक नाटक को मध्ययुगीय परम्परा से जोड़ता है।

मुख्य विधा तो रासलीला या कृष्ण लीला है जिसे जनसाधारण ने आज भी उसी प्राचीन रूप में जीवित रखा है इसमें झांकियों, संगीत, कथोपकथन और नृत्यों का भरपूर प्रयोग किया जाता है रासलीला में कृष्ण के जीवन से सम्बोन्धित अनेकों झांकिया प्रस्तुत की जाती है बंगाल में 'जात्रा' की बहुत प्राचीन परम्परा है इसमें अब गद्य और गीतों को एक साथ प्रयोग किया होता है। दक्षिणी भारत में "यक्षगान" होता है। जिसमें अभिनय और नृत्य का सम्मिश्रण एक बड़े अनूठे ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। विषय पुराणों और महाकाव्यों से लिये जाते हैं । इसीलिए इन्हें "मिथ्या" कहा जा सकता है अभिनेता सुन्दर सजीली और विचित्र वेश भूषा पहनते हैं । गुजरात में "भवाई" और महाराष्ट्र में "तमाशा" का प्रचलन है उत्तर प्रदेश में नौटंकी खेली जाती है ये सब लौकिक नाटक हैं जो जन साधारण के जीवन के साथ सीधा जुड़े हुए हैं। कुछ नाटक इतिहास की रोमांचक कथाओं पर भी आधारित हैं और कुछ में आज भी मध्य युगीन कथाएं हैं "नकल" और "स्वांग" में सामायिक विषयों का समावेश कर जनता के लिए इन्हें और भी रोचक और ग्राह्य बना लिया जाता है कथकली और कूटिकम भी लोक नाटक के प्राचीन और लोक प्रिय रूप हैं।

हिमाचल प्रदेश में भी लोक नाटक की अपनी एक स्वतन्त्र परम्परा है स्थान स्थान पर ये नाटक अभिनीत होते हैं, जिनमें रंग-रंग की वेशभूषा रसीले कथोपकथन लकड़ी, कागज, माटी और पीतल के मुखोटों का प्रयोग होता है इसलिए यहां के लोक नाटकों का विषय अधिकतर लौकिक है और इनका मुख्य उद्देश्य खाली क्षणों में मनोरंजन प्रदान करना ही है । कथाएं और स्थानीय नृत्यों की शौर्य पूर्ण गाथाएं भी इन का विषय बन गई हैं बौद्ध बिहारों में लोग कुछ उत्सवों पर चारपाइयों से एक अस्थाई रंग मंच खड़ा कर लेते हैं और एक के बाद एक कितने ही दृष्य प्रस्तुत करते हैं। लाहुल और स्पीति तथा किन्नौर प्रदेश में ऐसे नाटकों की अपनी परम्परा है इन नाटकों में सामायिक विषयों का सम्मिश्रण नहीं रहता।

लोक नाटक के अलग-अलग रूप हिमाचल प्रदेश के भिन्न भिन्न-भागों में देखने को मिलते हैं मण्डी में इसे "बाण्ठड़ा" बिलासपुर में "स्वांग" और शिमला में "करियाला" कहते हैं चम्बा का "नवाड़" ऊपरी शिमला का "शांत" तथा भोज" भी इसी परम्परा में आते हैं, "लुण्यान्तर" "रास" "तमासा" "भगत" लोक नाटक के अन्य रूप हैं कांगड़ा में "भगत" या "रास" खेली जाती है इन रासों को रतजगों, विवाह के अवसरों तथा अन्य प्रसन्नता के अवसरों पर मंचित किया जाता है इसमे विदूषक मुख्य पात्र होता है जो लोगों को अपनी चटपटी

भाषा में उल्टी सीधी बातें करके हंसता है उसके हाथ में एक छोटी और टेढ़ी सी छड़ी होती हैं जिसे कभी-कभी वह इस तरह घुमाता है कि उससे अश्लीलता का आभास होने लगता है उसके अभिनय और बीच में भी अश्लीलता का काफी पुट रहता है पर क्योंकि "रास में" नारी पात्रों का अभिनय भी पुरूष ही करते हैं और प्रेक्षकों में भी स्त्रियां नहीं होती इसीलिए अश्लीलता का प्रयोग क्षम्य माना जाता है "मुसालची" "गायक" के साथ साथ घुमता है अंधरें में "मसाल" "स्पाट लाइट" का काम करती है।

रास को मंचित करने के लिए किसी विशेष रंगमंच की आवश्यकता नहीं होती बहुत बार "रास" किसी गांव या व्यक्ति विशेष के नियन्त्रण पर ही होता है झुटपुटा होते ही कलाकार किसी पेड़ या चौपाल में आ जुड़ते हैं। लोग रात के खाने के उपरान्त तमासा देखने के लिए उमड़ पड़ते हैं । आ के एक वृत में बैठ जाते हैं या खड़े रहते हैं। कुछ अन्य गण्य मान्य व्यक्तियों के "लिए" कुछ चारपाइयां लगा दी जाती हैं, खेल शुरू होता है। कोई एक कहानी भी कई तरह के सूत्र थामे ढोलक और तबले की थापों हरमोनियम की धुनों, "खड़तालों", नगाड़ियों और शहनाइयों की ध्वनि में डूबती उतराती आगे बढ़ती हैं नृत्य और संगीत के रस में विभोर कुछ दर्शक करंसीं नोट निकाल कर पात्र की ओर बढ़ाते हैं रास का मुखिया नोट लेकर इसे हवा में घुमाते हुए ऊंचे बोलता है–बेल भई बेल, ( ) रूपये की बेल इत्यादि यह खेल कई बार रात रात भर चलता है और दर्शक बार-बार फरमाइशें करते रहते हैं। बेलें होती रहती हैं।

फिल्मों और रेडियो के कारण अब लोग ऐसे नाटकों के प्रति उदासीन होने लगे हैं परन्तु इनका मूल रूप में बने ही रहना श्रेयस्कर होगा यह सब कुछ हमें अपनी माटी से बांधता है अपना संगीत, अपना नृत्य अपना अभिनय हमें "निज" से सम्बन्ध बनाएं रखने की प्रेरणा देता है और सब से बड़ी बात तो यह है कि हम अपने प्रदेश की कला और संस्कृति को दूसरों के सम्मुख प्रदर्शित कर पाते हैं और ऐसा करके हमें आत्म प्रकाशन का अवसर मिलता है इसलिए यह बहुत आवश्यक हो गया है कि हम इस ओर ध्यान दें और लोक नाटक को जीवित बनाए रखने के लिए सजग प्रयत्न करें।

प्राध्यापक गवंर्नमेंट कालेज, शिमला।

1. Much of the anthropological matercal called folklore comes from rural poputation of the civilized world.

Encyclopaedia of Social Sciences.

कांगड़ा के लोक नाट्य

—अशोक शर्मा

लोक साहित्य मे किसी प्रदेश विशेष की संस्कृति, जन-जीवन, जन-विश्वास, मान्यताएं और परम्पराए सन्निहित होती हैं । उस में उस प्रदेश की 'ऐतिहासिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन की सलिल-धारा निरन्तर प्रवाहित होती रहती है । कांगड़ी लोकसाहित्य में लोकगीतों, लोककथाओ और लोक नाट्यों की एक समृद्ध परम्परा है । इनमें लोक नाट्य परम्परा सभ्यता के विकास और सांस्कृति संक्रमण के वर्तमान उद्दाम वेग से काल, के गाल में लुप्त प्राय : हो गई है । इस कला के संरक्षण और सम्बर्द्धन के लिए इस क्षेत्र में शोध-पूर्ण अध्ययन की आवश्यकता को अनुभव किया जा रहा है।

वस्तुतः नाट्यकला सभी कलाओं एवं साहित्यक विधात्मक रूपों में प्राचीनतम है। कहा जाता है कि मानव समाज में नाट्यकला की उत्पत्ति उसी दिन हुई, जिस दिन किसी बालक ने खेल खेल में अपने में किसी अन्य व्यक्ति की कल्पना की । भारतीय वाङ्मय में तो नाटक को पंचम वेद की संज्ञा दी गई है और इस का प्रवर्त्तक स्वंय ब्रह्म को बताया गया है । नाट्यकला का उद्भव लोक से हुआ और यह लोकवृत्त का ही अनुकरण है । भरतमुनि ने ब्रह्मा से कहलवाया है कि नाटक में उत्तम, मध्यम और अधम श्रेणी के व्यक्तियों के कर्म को संश्रय मिलता है । जब सभी प्रकार के मनुष्यों के कर्मों का अनुकरण नाटक में निहित है और सभी ज्ञान, सभी शिल्प, सभी कला और सभी शास्त्र नाटक में निवास करते हैं तो यह कला अपने मूल रूप में लोक की कला, लोक द्वारा कला और लोक के लिए कला है[1] ।

मनोविनोद के साधन ढूंढ निकालता है। इन साधनों में नाटक का स्थान मुख्य है क्योंकि यह काव्य की दृश्य और श्रव्य दोनों श्रेणियों में आता है और रसास्वादन में अधिक सहायक है ।

किसी भी प्रदेश का लोक मानस अपने परिवेश और रूचियों के अनुसार अपने मनोरंजन और

1 "Droma could spring from the play of a child who imagines, foı the time being, that he is some one else." Donald Clive Stuart (Prof).
The Development of Dramatic Art.

1. लोक वृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम् ।
उत्तमाधमध्यानां नराणां कर्मसंश्रयम
न सौ योगे न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यत्र दृश्यते ॥
न तज्ज्ञानं न तच्छिल्प न सा विद्या न सा कला ।
सर्वशास्त्राणि शिल्पानि कर्माणि विविधानित्र
– भरत नाट्यशास्त्र अध्याय 1-113

मनोविनोद के साधन ढूंढ निकालता है । इन साधनों में नाटक का स्थान मुख्य है क्योंकि यह काव्य की दृश्य और श्रव्य दोनों श्रेणियों में आता है और रसास्वादन में अधिक सहायक है ।

कांगड़ी लोकनाट्य भारत की उस विस्तृत लोकनाट्य परम्परा का ही एक महत्वपूर्ण अंग है जिसमें अवधी , पूर्वी हिन्दी ब्रज तथा खड़ी बोली के 'रास', नौटंकी', स्वांग 'भाण्ड', राजस्थानी के 'रास' झूमर, "ढोला मारू–गुजराती का भवाई' महाराष्ट्री, के 'लड़ित' और 'तमाशा' आन्ध्र का 'भगवतमल' आदि सम्मिलित हैं ।

कांगड़ा घाटी में लोक नाट्यों के विविध रूप जनसमुदाय में प्रचलित हैं । इन में 'भाण्ड या वाण्डे, 'रास' 'भगत', 'जात्रा' और 'स्वांग' प्रमुख हैं इसके अतिरिक्त विभिन्न अवसरों और पर्वों पर प्रचलित नृत्य नाटिकाऐं भी हैं परन्तु इनका अभिनय और कथापक्ष अब गौण हो गया है और इन में अब मात्र नृत्य सङ्गीत ही प्रमुख रहता है । उदाहरणार्थ वर्षा न होने पर झीवर या झीर जाति के लोगों द्वारा इन्द्र देवता की प्रसन्नता के लिए एक नृत्य नाटिका घर घर जा कर प्रस्तुत की जाती रही है जिसमें कभी कथा और संवाद रहे होंगे परन्तु अब इन में नृत्य संङ्गीत ही बचा है ।

भाण्ड या वाण्डे

'भाण्ड' या 'वाण्डे सम्भवतः संस्कृत रूपक 'भाण' का ही रूपान्तर है क्योंकि संस्कृत नाट्याचार्यों ने 'भाण' की जिस शैली और विशेषताओं का निरूपण किया है वह कांगड़ा के लोक नाट्य 'भाण्ड' या 'वाण्डे से बहुत कुछ मिलती जुलती है । साहित्यदर्पण के अनुसार 'भाण' में धूर्तों के चरित से युक्त, अनेक अवस्थाओं से व्याप्त निपुण विट जो रंग भूमि पर स्वानुभूत या औरों की अनुभूत बातों को प्रकाशित करता है । सम्बोधन और उक्ति प्रत्युक्ति 'आकाशभाषित के द्वारा होती है । कथा कल्पित, वृत्ति भारती या कौशिकी होती है । वीर और शृंगार रस होता है । मुख और निर्वहण सन्धियां होती हैं :

इस कांगड़ी लोक नाट्य में भी उपरोक्त सभी विशेषताएं किंचित परिवर्तन के साथ पाई जाती हैं । इसमें कोई चतुर भण्ड (भाण्ड का कलाकार) अपने और दूसरों के हास्य और व्यंग्य प्रधान अनुभवों को आकाश भाषित या वार्तालाप द्वारा प्रस्तुत करता है । यह अनुभव ग्रामीण परिवेश से सम्बन्धित होते हैं और कभी कभी बहुत अधिक अश्लील भी होते ह। कांगड़ा की नूरपुर और देहरा तहसीलों में 'मिर्चु' भण्ड की बहुत अधिक ख्याति है ॥

देहरा तहसील' के 'अमलेला नामक गांव में प्रतिवर्ष कार्तिक मास की पंचभीष्म पूर्णिमा की रात्री को 'भाण्ड' या 'वाण्डे' प्रस्तुत किए जाते हैं । यह लोक नाट्य इतना अधिक लोक प्रिय है कि आस-पास के गांवों से विशाल जनसमुदाय इसे देखने के लिए एकत्रित हो जाता है । नाटक का अन्त पंच

2. भाण: स्यद्धूर्तचरितो नाना वस्यान्तरात्मक :
एकाङ्क एक एवात्र निपुण: पण्डितो विट: ॥
रङ्गे प्रकाशयेत्स्वेना नूभूतमिरण वा ।
सम्बोधनोक्ति प्रत्युक्ती कुर्यादाकाशभाषितै : ।
—साहित्यदर्पण षष्ठ परिच्छेद ॥227-230॥

1. इन सज्जन का यह वास्तविक नाम है और शायद यह नाम उनकी कला के अनुरूप भी है । यह गांव ढन डाकखाना ज्वाली '(कांगड़ा) के निवासी हरिजन हैं ।

पाण्डवों के स्वांग की पूजा से होते हैं। आजकल इसमें लोक भाषा में 'हीर रांझा 'पूर्णभगत' 'राजा हरिश्चन्द्र' आदि नाटक भी खेले जाते हैं। वृक्ष के नीचे दरी बिछा कर मंच बना लिया जाता है–एक ओर तबला, हारमोनियम आदि बजाने वाले बैठ जाते हैं और नाट्याभिनय प्रारम्भ हो जाता है।

रास

ब्रज और राजस्थानी का लोक नाट्य 'रास' कांगड़ा में भी खेला जाता है। यद्यपि दुर्गा या शक्ति ही इस उपत्यका का प्रमुख आराध्य देव है तथापि कृष्ण के प्रति भी लोगों में अगाध श्रद्धा है। इस लोक नाट्य की शैली भी मुख्यतः ब्रज और राजस्थानी 'रास' की शैली से मिलती जुलती है। इसका कारण यह कि अतीत में वहां की रास मंडलियां इस क्षेत्र में भी रास का प्रदर्शन करती रही हैं और उनके प्रभाव से ही यहां रास मण्डलियों का संगठन हुआ। कृष्ण गोपियों के साथ रात भर नृत्य और अभिनय करते रहते हैं। कृष्ण गोपियों के संवाद माध्यम से ही कृष्ण लीला के प्रसंगो को अभिनीत किया जाता है। बीच-बीच में विदूषक पात्र 'मनसुखा' लोगों को अपनी हरकतों और बातों से हंसाता जाता है। संवादों और गीतों की भाषा लोकभाषा ही रहती है। अब हिन्दी गीतों और संवादों का प्रचलन भी होने लगा है। सम्पूर्ण नाटक छन्दोबद्ध एवं गेय होता है। नाटक के सभी पात्र आदि से अन्त तक रंगमंच पर विद्यमान रहते हैं। स्त्री पात्रों का अभिनय पुरुष ही अनुकूल वेश-भूषा धारण करते हैं।

भगत

यह लोकनाट्य ग्रामीण समाज में बहुत अधिक लोकप्रिय है। शरद ऋतु के प्रारम्भ होते ही लोक मनोरञ्जन के लिए लोकनाट्य आयोजित किये जाते हैं। इसके कलाकार 'भगतिए' कहलाते हैं। यह इन लोगों का व्यवसाय नहीं होता परन्तु इन की शौकीन मण्डलियां होती हैं। गांव के समृद्ध लोग लड़का पैदा होने या शादी ब्याह आदि खुशी के अवसरों पर भगतिया मण्डली को इस लोकनाट्य का प्रदर्शन करने के लिए आमन्त्रित करते हैं। लोक भाषा में सीधे-सादे ढंग से यह लोग 'प्रहलाद भगत', पूर्ण भगत, सस्सी पुन्नू, 'कौलां ब्राह्णी' आदि नाटकों को अभिनीत करते हैं। नाटक का प्रारम्भ 'नान्दीया' (नान्दी वाक्य) और मंगलचरन से होता है। संवाद और कथा इतने रोचक ढंग से प्रस्तुत किए जाते हैं कि श्रोता मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं। यह कार्यक्रम रात्रिभर चलता है। एक रात्रि में एक से अधिक नाटकों को भी अभिनीत किया जा सकता है।

स्वांग

यह संस्कृत 'प्रहसन' और अंग्रेजी 'Comic Drama' की तरह का लोकनाट्य है। पात्र मुखौटे लगा कर घर-घर नृत्य करते हुए वार्तालाप द्वारा हास्यरस की सृष्टि करते हैं। कोई एक कथा इस में नहीं होती। संक्षिप्त कार्यक्रम होता है। होली, लोहड़ी आदि पर्वों पर स्वांग की परम्परा प्रचलित है।

जात्र या जात्रा

बंगाल की जननाटक परम्परा की तरह कांगड़ा में भी जात्रा नाटकों का प्रचलन था। धार्मिक श्रद्धालु देवी-देवताओं के दर्शनार्थ पैदल यात्रा करते हुए जाते हैं। जहां यह रात्रि को पड़ाव लगाते

हैं वहां उस देवी-देवता से सम्बन्धित लीला नाटकों को अभिनीत करते हैं। कांगड़ा में दुर्गा या शक्ति जात्रा, गुग्गा परिजात्रा, शिव्बोथान यात्रा ((शिव स्थान) और द्योट-सिद्ध जात्राओं का प्रचलन मुख्य रूप से था। अब आवागमन के द्रुतगामी साधन हो जाने के कारण यह लोकनाट्य समाप्त ही हो चुका है। लेकिन अपवाद रूप में अब भी ज्वालामुखी, कांगड़ा और दयोट सिद्ध में श्रद्धालु विशेष अवसरों पर यदा कदा ऐसे आयोजन करते रहते हैं। जात्रा या यात्रा-नाटकों वैदिक काल से भारत में प्रचलित रहे हैं। इनके साथ लोक की धार्मिक भावना जुड़ी हुई है।

कांगड़ा की यह लोकनाट्य कला धीरे-धीरे विस्मृति के गर्त में विलीन होती जा रही है। लोक-नाट्य अपठित समाज के मनोरञ्जन का प्रमुख साधन रहा है और इसने पठित समाज के साहित्यिक नाटकों को भी प्रभावित किया है। संस्कृत नाटकों का 'विदूषक' लोक नाट्यों के हंसोड़ पात्र से ही लिया गया था। लोकनाट्य साहित्य नाटकों से भी प्रभावित हुआ है, रंगमंच आदि कलाओं का समावेश लोकनाट्यों में साहित्यक नाटकों से ही आया। हिन्दी नाटक की विकास प्रक्रिया जन में नाटकों की भूमिका को तो सभी विद्वान अब एक मत से स्वीकार करते हैं।

भाषा अध्यापक,
राजकीय उच्च विद्यालय,
हरसर (कांगड़ा)।

"Folklore may be said to include the culture of the people which has not been worked in the official religion and history but which is and has always been of self growth"

[—R. R. Marett, Psychology & Folklore page 76

1. "Even the vedic Age knew jatras; memorable heirloom of Aryan antiquity. The Gods of the Rigveda were hymned in choral processions. Some of the Samveda hymns reached the rude mirth of the primitive jatra dances."—The Indian Theatre Page 178 Mr. E P. Harwitz.

गणतन्त्र-पद्धति का विशिष्ट आदर्श

मलाणा

मौलू राम ठाकुर।

भारत आज संसार भर में सब से बड़ा लोकतन्त्र है। भारत के संविधान को विश्व के विभिन्न संविधानों की मुख्य विशिष्टताओं का निचोड़ कहा जाता है। परन्तु वास्तव में भारत के लोक-तन्त्र के आधार में उस की प्राचीन परम्पराएं हैं। वैदिक साहित्य से लेकर भारतवर्ष का इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत की प्रशासन-प्रणाली विभिन्न जनपदों पर निहित थी जहां लोकतन्त्रात्मक साम्राज्य स्थापित थे। ऐसे ही गणतन्त्र का एक उज्जवल उदाहरण मलाणा गांव है जो आज भी संसार के सहस्त्र उथल-पुथलों और सभ्यता की सैकड़ों करवटों के बावजूद अपनी प्राचीन परम्परा और मान-मर्यादा सुरक्षित रखे हुए है।

'मालाण' हिमाचल प्रदेश के कुल्लू जिला की नगर कोठी में पहाड़ों और जंगलों से घिरा अलग-थलग सा गांव है। 12,500 फुट ऊंची चन्द्रखणी पर्वत शिखा और बीहड़ तथा दुर्गम मार्गों ने इसे आदिकाल से आज तक शेष आबादियों से पृथक तथा बाहरी प्रभावों से अछूता रखा है। इस दूरस्थ तथा विलग गांव तक तीन विकट मार्गों से पहुंचा जा सकता है। पहला मार्ग कुल्लू से नगर 12 मील मोटर से चल कर नगर से चन्द्रखणी पर्वत पार करके दूसरी ओर मलाणा लग-भग बारह मील पैदल सफर है। दूसरा रास्ता कुल्लू से भून्तर, भून्तर से मणिकरण जीप सड़क है तथा मणिकरण से कसोल और रशोल गांव होता हुआ लग-भग दस मील का पैदल सफर है। भून्तर-मणिकरण जीप-सड़क पर ही भून्तर से सात मील दूर जरी से तीसरा मार्ग चलता है जो लग-भग नौ मील की दूरी है।

समुद्री तल से लग-भग नौ-दस हजार फुट की ऊंचाई पर बसा मलाणा गांव चारों ओर पहाड़ों से घिरे एक समतल स्थान पर स्थित है। 1951 में पूरे गांव की जनसंख्या 514 थी, जिस में पुरुषों और स्त्रियों का लग-भग समान अनुपात था। अब इस की जन-संख्या 650—700 के बीच होगी। लोग मुख्यतः खेती-बाड़ी का काम करते हैं, यद्यपि भेड़-बकरियां पालना भी उन का बड़ा धन्धा है। गांव में लग-भग सोलह सौ बीघे जमीन है जिस में साल में केवल एक बार जौ, गेहूं और काठू की फसल होती है। अब कुछ वर्षों से मकई की फसल भी बोई जाने लगी है, परन्तु अन्न यहां की आबादी के लिए काफी नहीं होता। अत: लोग कड़, पतीश, गूगल जड़ी-बूटियां और शहद बेच कर अपने खर्च को पूरा करते हैं। जो लोग भैड़ें पालते हैं, वे सर्दी के मौसम में अपनी भेड़-बकरियां मण्डी, सुकेत आदि स्थानों तक पहुंचाते हैं। इन के मकान कुल्लू के अन्य गांवों के मकानों से भिन्न नहीं हैं। लकड़ी और पत्थर के बने प्रायः तीन मंजिला मकान होते हैं, जिन में बीच की मंजिल स्वयं रिहायश के लिए तथा निचली मंजिल प्राय: पशुओं के लिए होती है। तीसरी मंजिल यूं तो सामान रखने के काम में लाई जाती है, परन्तु इसे पवित्र स्थान के रूप में माना जाता है जिस में देवता वास करता है। भले ही लोगों को अपनी जमीन से गुजारे के लिए पर्याप्त अन्न नहीं मिलता, परन्तु ग्राम देवता के प्रति इतनी श्रद्धा है कि

प्राचीनकाल से निर्धारित अन्न की मात्रा देवता के भण्डार में अवश्य जाएगी। देवता जमलू सारे गांव और जमीन का मालिक है और लोग देवता के मुजारे के रूप में काम करते हैं। देवता के प्रति श्रद्धा का दूसरा प्रमाण यह है कि देश भर में मुजारा अधिनियम लागू होने पर भी जमलू देवता के श्रद्धालुओं ने मुजाराधीन जमीन का मालिक बनना स्वीकार नहीं किया है और आज भी वे देवता के मुजारे के रूप में भूमि बोते हैं। स्वतंत्रता से पूर्व देवता की भूमि पर लग-भग दो हजार रुपये की मालगुजारी निर्धारित थी, जिस में से देवता को 838 रुपये 15 आने की मुआफी प्राप्त थी। यह मुआफी कुल्लू के देवताओं की मुआफियों में सब से अधिक थी। दूसरा स्थान बिजली महादेव का है जिसे 715 रुपये की मुआफी प्राप्त थी। देवता के भण्डार में मुजारों से आया अन्न देवता के त्योहारों में पकता है और लोगों को खिलाया जाता है। देवता जमलू के मलाणा से बाहर भी बारह देउघरे अर्थात् देवगृह कुल्लू में और तीन सिराज में हैं।

स्थानीय अनुश्रुति के अनुसार देवता जमलू वैदिककाल के महर्षि जमदग्नि हैं। कहते हैं कि एक बार महर्षि जमदग्नि कैलाश की यात्रा करके स्पिति की ओर से जोत हामटा होते हुए कुल्लू और मलाणा जा रहे थे। महर्षि अपने साथ एक टोकरी (स्थानीय बोली में 'करण्डी', में अठारह देवताओं की मूर्तियां उठाए हुए थे। जब वे चन्द्रखणी पर्वत शिखर पर पहुंचे, जिस की एक ओर नगर और दूसरी ओर मलाणा स्थित हैं, तो इतनी तेज आन्धी चली की टोकरी में रखी अठारह देवताओं की प्रतिमाएं टोकरी से उड़ कर दूर-दूर स्थान पर जा गिरी और जहां-जहां वे गिरी वहीं पर देवता या देवी के रूप में आविर्भूत हुई। यही कारण है कि कुल्लू भर के सभी देवता फागुण और चैत्र महीनों में अपनी भार्था अर्थात् जन्म कथा सुनाते हुए कुल्लू को "ठारह करड़ू रा देश" कहते हैं। स्वयं जमदग्नि जब मलाण पहुंचे तो वहीं वास करने लगे और एक बस्ती बसाई और लोगों द्वारा देवता जमलू के रूप में पूजे जाने लगे, परन्तु महर्षि जमदग्नि का यहां न कोई रथ है, न मूर्ति, न कोई मोहरा। यह बड़ा अपवाद है क्योंकि कुल्लू के शेष देवी-देवताओं के रथ, मोहरे और मूर्तियां हैं। महर्षि के साथ उनकी धर्म-पत्नी रेणुका थी। रेणुका की स्थानीय भाषा में नरोई या महामाया के रूप में पूजा होती है। देवता के रथ या मूर्ति के बजाये देवते के मंदिर में देवता के नाम से असंख्य साज-सामान का भण्डार है जिस में अष्ट-धातु की नफेरियां, चांदी और ताम्बें के नरसिंगे, करनाल, सूरज-पंख, छड़ियां, नगारे, ढोल ध्वज आदि इतनी संख्या में हैं कि उन की कभी गिनती नहीं हुई है। इन की संख्या आए साल बढ़ती रहती है क्योंकि, देवता के उपासक उन की इच्छाओं की पूर्ति पर मनौती के रूप में ऐसे उपकरण चढ़ाते रहते हैं। यही नहीं श्रद्धालू देवता के नाम सोने-चांदी के घोड़े, हाथी, भेड़ें तथा नकद रकम भी चढ़ाते हैं। भण्डार में एक बार आई सम्पत्ति निकाली या खर्च नहीं की जाती। अत: देवता के भण्डार की सम्पत्ति का अंदाजा नहीं लगाया जा सकता।

केवल वर्ष में दो बार फागुन और सावन महीनों के मेलों के अवसर पर इन साज-सामान में से जितना उठाया जा सके मेले के मैदानों में निकाला जाता है। फागुन महीने के मेले में अकबर बादशाह की सोने की मूर्ति भी निकाली जाती है। कहते हैं किसी साधु को देवता जमलू के मंदिर से एक टका अर्थात् दो पैसे दान मिले। साधु फिरता-फिराता जब दिल्ली पहुंचा तो जमलू देवता द्वारा दिए दो पैसे साधू से जजिया के रूप में लिए गए। अकबर के खजाने में टका आने पर बादशाह का स्वास्थ्य बिगड़ा और तब तक बिगड़ता गया जब तक कि राजा को स्वप्न में इस का कारण मालूम न हुआ। जब खजाने में टके की तलाश हुई तो दोनों पैसे आपस में जुड़े पाए गए जिन्हे बादशाह ने अपनी सोने की मूर्ति के साथ जमलू देवता को लौटाया।

Scanned with CamScanner

चन्द्रखणी पर्वत-शिखा से सीधा लगभग दो मील नीचे कदरे समतल और खुले स्थान पर स्थित मलाणा गांव स्पष्टतः मुख्य दो भागों में विभक्त है। दोनों भाग एक दूसरे से लग-भग सौ गज दूर हैं। इन दो मुख्य खण्डों में से एक का नाम सौरा बेढ़ और दूसरे का धारा बेढ़ है दोनों के ठीक बीच में देवता का स्थान है जिसे 'हारचा' कहते हैं इसी हारचा मैदान में देवते का भण्डार है विवाह दोनों भागों के बीच होता है अर्थात सौरा बेढ़ का लड़का धारा बेढ़ से और धारा बेढ़ का लड़का सौरा बेढ़ से लड़की पत्नी के रूप में लाता है। अपने गांव से बाहर मलाणा के लोग शादी नहीं करते। केवल एकाध उदाहरण हैं जहां मलाणा से बाहर निकटतम रशमेल गांव वालों से विवाह हुआ है। इस प्रकार विवाह की परम्परा केवल अपने गांव तक सीमित रख कर मलाणा के लोगों ने अपने जातीय भेद भाव को पूर्णतया सुरक्षित रखा है। यही कारण है कि मलाणा वासियों से दूर रखा है, वरन् उन की शारीरिक संरचना भी अपनी जातीय विशिष्टता को स्पष्ट रूप से सुरक्षित रखे हु है। सिर गोल, माथा चौड़ा, चेहरा लम्बोतरा, नाक नोकदार, आंखें गोल और शरीर की रंगत रक्तिमा लिए हुए है जिस से उन का मुख तमतमाता हुआ लगता है, कुछ विद्वान इन्हें मंगोल जाति से मानते हैं परन्तु इन के मंगोल की तरह न नाक चपटा होता है और न चहरा उस कदर चौड़ा। स्थानीय अनुश्रुतियों के अनुसार मलाणा के लोग स्पिति के दो भाइयों कजली और बिजली के वंशज हैं, परन्तु अनुश्रुति के अतिरिक्त इस बात की कोई और पुष्टि नहीं क्योंकि कम से कम शारीरिक रचना में स्पिति के लोगों और मलाणा के लोगों में कोई साम्यता दिखाई नहीं देती। भाषाई दृष्टी से भी स्पिति की भाषा की अपेक्षा कुल्लू की आर्य भाषा से इस का सम्बन्ध अधिक जुड़ता है। यहां की भाषा को 'कणाशी' कहते हैं। कुल्लू की ली में काणाश का अर्थ देवता की बोली है। जब देवता के गूर में देवता की आत्मा प्रवेश करती है तो वह जो संकेत और भाख बोलता है उसे 'कणाश दना' कहते हैं। चूंकि मलाणा पूर्णतः देवता जमलू का राज्य है अतः यहां की भाषा को 'कणाशी' अर्थात् देवता की बोली कहना उचित है। यूं इस में स्पित्ति, कुल्लू की पहाड़ी और संस्कृत भाषा का पर्याप्त मिश्रण है। ज्येष्ठांग, कनिष्ठांग, कर्मिष्ट, कोर, देशंग देश, ग्रांमग '(ग्राम, माणशंग, मनुष्य आदि शब्दों से संस्कृत का पर्याप्त प्रभाव स्पष्ट होता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि कुलुई के जिन शब्दों का सम्बन्ध संस्कृत से नहीं जुड़ता व मूल रूप में मलाणा की भाषा में प्रचलित है। जिस से यह बात स्पष्ट होती है कि इस सारे क्षेत्र में खश लोग रहते थे जिन की भाषा के अवशेष अब मलाणा में हैं और जिन की पर्याप्ति शब्दावली कुलुई महासुई तथा सिर मौरी आदि पहाड़ी भाषा में मिलती है :

यहां की वेशभूषा भी स्पिति से भिन्न परन्तु कुलुई से अधिक निकट है। सूती कपड़ों का अभी भी रिवाज नहीं है। लोग-पुरूष और स्त्री, अपनी भेड़ों की ऊन के अपने हाथों से बनाए कपड़े पहनते हैं। मर्द वही टोपी, कोट, चोला, सूथन, पहनते हैं जो कुल्लू के गांव वाले पहनते हैं, केवल इन की टोपी में मखमल या रंगदार पट्टी न होकर उसी ऊनी कपड़े की पट्टी होती है। स्त्रियों के लिबास में कुछ भिन्नता है। वे घाटू, थिपू या रूमाल नहीं पहनती बल्कि ऊनी कपड़े की घुग्गी या घुगली पहनती हैं जो सिरे पर ऊपर होती है और पल्ला सिर से नीचे पीठ के आधे भाग तक पहुंचता है जिस से वर्षा का पानी गर्दन से होता हुआ शरीर में नहीं पड़ता बल्कि ऊपर ही ऊपर पीठ से होता हुआ नीचे गिरता है। इस तरह घुग्गी दुपट्टे का काम भी देती है और छतरी का भी। ऐसे ही, स्त्रियां पजामा न पहन कर घुटने से टांग तक ऊनी जुराब लगाती हैं जिसे पाहुवा कहते हैं। टांग से ऊपरी भाग को शरीर पर पहना घुटने से नीचे तक ऊन का पट्टू सुरक्षित रखता है।

जैसा कि पहले कहा गया है कि मलाणा के लोग न गांव से बाहर अपनी लड़की का विवाह करते हैं और न गांव के बाहर से पत्नी लाते हैं। सौरा बेढ़ और धारा बेढ़ गांव के दो भागों के बीच ही विवाह

होता है। विवाह के लिए मां बाप की रजामंदी ही एक मात्र नियम है। हां, लड़के-लड़की की आपसी पसंद का भी ख्याल रखा जाता है। ऐसा विवाह प्रदेश के अन्य भागों के विवाह से भिन्न नहीं। परन्तु यहां अपहरण का आम रिवाज है। यदि दाम्पत्य जीवन में अनबनी हुई तो पति-पत्नी का रिश्ता सहज ही टूट जाता है। अपहरण करते समय पुरूष स्त्री को ले कर देवता के मैदान 'हारचा' की ओर भाग जाता है। यदि पीछा करते हुए उसे बेढ़ सीमा के अन्दर या हारचा पहुंचने से पहले पकड़ लिया गया तो हरजानें के रूप में पच्चीस रूपये लिए जाते हैं। यदि वह सीमा से बाहर निकल गया और हारचा पहुंच गया तो केवल बीस रूपय देने पड़ते हैं। यह बीस और पच्चीस रूपये का जुर्माना प्राचीनकाल से चला आ रहा है। आज इस का क्या मूल्य है यह श्रोता पाठक स्वयं समझ सकते हैं। परन्तु विनिमय दर अधिक कम नहीं है, क्योंकि इसी दर पर सभी कारोबार चलता है। यदि ऐसा अपराध गांव का अधिकारी जठेरा या फोगलदार आदि करे तो जुर्मान की दर दुगनी होती है। नकदी की जगह सात गज लम्बी मोटे कपड़े की पगड़ी ढाई गज लम्बी धोती और एक बकरी दी जा सकती है

मलाणा गांव गणतन्त्र शासन का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। सारे गांव में साक्षरता नाम मात्र को भी नहीं है। सन् 1946 में पहली बार एक प्राइमरी स्कूल खोला गया था। परन्तु आज तक एक लड़के ने भी प्राईमरी पास नहीं की है। फिर भी इस कदर निरक्षरता के समाज में एक उच्च कोटि की सफल लोक तन्त्र पद्धति प्रचलित हो यह आधुनिक सभ्यता के पुजारियों के लिए चेतावनी है। इस का कब आरम्भ हुआ और किस प्रकार अक्षुण्ण चली आ रही है, यह एक शोध का विषय है।

देवता जमलू गांव का सर्वोच्च प्राधिकारी है। उसे लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार के अधिकार प्राप्त हैं। भारत या अमरिका के राष्ट्रपति या ब्रिटेन के सम्राट से इस के अधिकार कहीं अधिक हैं। इस के सामने कोई झूठ नहीं बोल सकता, दगा नहीं कर सकता, चोरी नहीं कर सकता। इस का क्रोध मोल लेने की किसी को हिम्मत नहीं हो सकती और यह हर किसी को दण्ड दे सकता है, क्षमा कर सकता है। मरने के बाद भी यह अपराधी का पीछा नहीं छोड़ता और श्रद्धालु का साथ नहीं छोड़ता यही डर उस के प्रशासन को हमेशा के लिए स्थायी रूप दे गया है। देवते की जनता गांव के लोगों को "रा देऊ" कहा जाता है अर्थात देवते की रियाया और देवता उन का सर्वोपरि प्राधिकारी है।

गांव में एक सदियों से आ रहा संसद है जिसे कोरम कहते हैं। कोरम के दो सदन हैं--अपर हाउस को 'ज्येष्ठांग' और लोअर हाउस को कोर या कनिष्ठांग कहते हैं। ऊपरी सदन अर्थात् ज्येष्ठांग भारत की राज्य सभा या ब्रिटेन के हाउस आफ लार्ड की तरह कमजोर नहीं अमेरिका के सिनेट की तरह शक्तिशाली है परन्तु निम्न सदन के नियन्त्रण से बाहर नहीं है। ज्येष्ठांग के कुल ग्यारह सदस्य होते हैं। इन में से तीन स्थायी और आठ अस्थायी सदस्य हैं। सारे गांव में कुल चार मुख्य वंश हैं जिन्हें "चुग" कहते हैं। इनका नाम थमयाणी, नगवाणी, पलचाणी और दुराणी (या शिल्हु) चुग है। इन चारों वंश या युग के दो, दो कुल हैं। जिन्हें "छुट्टी' कहते हैं। कुलुई में छ ढी का अर्थ अपना है। इस प्रकार कुल आठ छुट्टियां हुई। इस तरह हर एक छुट्टी से एक एक या दूसरे शब्दों में हर एक चुग से दो दो सदस्य ज्येष्ठांग के लिये चुने जाते हैं। इन्हें "जठेरा" कहा जाता है प्रत्येक जठेरे को सम्बन्धित चुग के सदस्य चुनते हैं। इन आठ जठेरों के अतिरिक्त तीन सदस्य देवते के कर्मचारी होते हैं। इन में से "कर्मिष्ठ" देवते का कारदार प्रबन्धक और गांव का मुख्य होता है। यह प्रायः थमयाणी चुग से चुना जाता है। एक "पुजारी" नगवाणी चुग से चुना जाताहै और तीसरा सदस्य देवता का "गूर" होता है। यह देवता द्वारा स्वंय चुना जाता है। विशेष अवसर पर जिस किसी में देवता की आत्मा प्रवेश कर जाए वही गूर होता है। उस समय के विशेष हाव भाव और शारीरिक विशिष्ट चेष्टा से स्वतः पता लग जाता है कि देवते

Scanned with CamScanner

की आत्मा का प्रवेश किस में हुआ है। यही गूर देवता का प्रवक्ता होता है। और हर विशेष समय पर देवता इसी के मुंह से अपनी इच्छा प्रकट करता है। यह तीन पदेन सदस्य देवता की इच्छा तक रहते हैं। अतः स्थायी सदस्य कहलाते हैं। इन के चयन में एक तरह की अग्नि परीक्षा होती है और चुनाव पर वे देवता और जनता के प्रति वफादारी की शपथ लेते हैं। शेष आठ जठेरों की सदस्यता का विशेष समय नहीं है, परन्तु किसी एक के मरने पर या निकाले जाने पर आठों सदस्य एक साथ सेवा निवृत हो जाते हैं। और तब दोनों सदनों के सामने नये जठेरों का चुनाव होता है, यद्यपि इन के चुनाव में केवल सम्बन्धित युग के वयस्क सदस्य भाग लेते हैं।

लोअर हाउस को कोर कहते हैं। इस में गांव के हर परिवार का एक एक व्यस्क व्यक्ति सदस्य होता है। चूंकि हर परिवार से एक एक सदस्य अवश्य होगा अतः इस में चुनाव की अपेक्षा सहयोजन की भावना अधिक है प्रायः वह घर का मुखिया होता है। प्रत्येक निर्णय में कोर की सहमति आवश्यक है। "रादेऊ" और कोर में यह अन्तर है कि जहां "रादेऊ" में देवते के क्षेत्र में रहने वाले सभी व्यक्ति बच्चे बूढ़े और जवान शामिल हैं। वहां कोर में घर का एक वयस्क व्यक्ति ही सदस्य हो सकता है। जिस घर में वयस्क पुरुष न हो उस घर की वयस्क महिला ही कोर की सदस्य होती है।

गांव के सारे प्रबन्ध की जिम्मेदारी जेष्ठांग की होती है। देवता का सारा कारोबार, गांव की प्रगति के काम, बाहर के मुआमलों पर सोच विचार, लड़ाई झगड़ा तथा अन्य मुकद्में की सुनवाई इसी का उत्तरदायित्व है। परन्तु कोई भी महत्वपूर्ण निर्णय कोर की सहमति के बिना नहीं हो सकता। दोनों सदनों के बीच मतभेद को केवल आपसी विचार विमर्श से ही दूर किया जा सकता है। जेष्ठांग अपना फैसला कोर पर नहीं थोंप सकता। जेष्ठांग के सदस्य कोर की सहमति लेने के प्रयत्न करते हैं। यदि इस प्रयत्न में वे सफल न हों तो कोर का फैसला अन्तिम होता है। परन्तु ऐसे मतभेद का अवसर प्रायः नहीं आता। यदि कभी आए भी तो देवता का गूर देवता का विचार सुनाता है। अन्तिम निर्णय जेष्ठांग का ही माना जाता है, भले ही उसे अन्तिम फैसले के लिए कोर के आगे झुकना पड़ा हो।

जेष्ठांग की सहायता के लिए चार "फोगलदार" होते हैं। चारों युगों से एक एक फौगलदार चुना जाता है जेष्ठांग के फैसले की तामील कराना फोगलदार की जिम्मेदारी है। इस तरह फोगलदार एक और कार्यकारिणी अर्थात् एग्जिकिटव का काम करता है तथा दूसरी ओर यह पुलिस का काम भी करते हैं। इस कार्य के लिए फोगलदार को देवते के खजाने से वर्ष में एक रुपया वेतन के रूप में मिलता है । फोगलदार के पास अधिक काम नहीं होता क्योंकि गांव के एक मत से हुए निर्णय की अवश्य ही तामील होगी परन्तु फिर भी यह देखना कि निर्णय का पालन समय पर हुआ है फोगलदार का कर्तव्य है।

दोनों सदनों अर्थात् ज्येष्ठांग और कोर का बैठक स्थान देवता का हारचा का मैदान है। इस मैदान में देवता के भण्डार के सामने एक लगभग दस हाथ लम्बा और चौड़ा तथा डेढ़ हाथ ऊंचा चौंतड़ा अर्थात् पत्थरों का चबूतरा है। ज्येष्ठांग के सदस्य इस चौंतड़े पर बैठते हैं और कोर के सदस्य चौंतड़े से नीचे चारों तरफ बैठते हैं। दोनों सदनों के सामने समस्या रखी जाती है और प्रथम चरण में ज्येष्ठांग के सदस्य आपस में तथा कोर के सदस्य आपस में अलग विचार विमर्श करते हैं। विमर्श के बाद ज्येष्ठांग का एक सदस्य चौंतड़े से नीचे उतर कर ज्येष्ठांग के विचार से कोर के सदस्यों को अवगत कराता है और उन के विचार सुनता है। यदि मतभेद हो तो चौंतड़े पर आकर ज्येष्ठांग के अन्य सदस्यों से पुनः विचार करता है। यह क्रम तब तक जारी रहता है जब तक सांझा समझौता नहीं होता।

सोमसी

जब कभी किसी समस्या पर विचार विमर्श करना हो तो या जब कभी भी दोनों सदनों को बुलाने की आवश्यकता पड़े तो ज्येष्ठांग का एक सदस्य चौंतड़े पर चला जाता है। और तीन बार जोर से पुकारता है 'दोय गटके', 'दोय गटके', 'दोय गटके', (द्रोही लगे) ज्येष्ठांग और कोर का जो भी सदस्य इस आवाज को सुनता है बड़े से बड़ा काम छोड़ कर भी तुरन्त हारचा मैदान में पहुंचता है। यह ऊंची पुकार "देवते की द्रोही" मानी जाती है और इस को सुनने वाला इस की उपेक्षा करने का साहस नहीं कर सकता। क्षणों में जिस के कान में भी आवाज पड़े या जिस को भी यह सूचना मिले हारचा मैदान में पहुंच जाता है और कार्यवाही आरम्भ हो जाती है। यदि किसी पीड़ित या फरयादी को तुरन्त निर्णय की उपेक्षा हो या यदि किसी को यह शंका हो कि उस की समस्या पर तुरन्त कार्यवाही होने वाली नहीं है तो वह हारचे में आकर चौंतड़े के पास आग जला देता है ज्येष्ठांग का जो भी सदस्य इस आग के धूएं को देख ले या आग के बारे में सब से पहले जान जाए वह तुरन्त वहां पहुंचता है और पूर्व कथित ढंग से तीन बार जोर से पुकारता है और कार्यवाही आरम्भ हो जाती है। गांव के हर छोटे बड़े झगड़े का हर तरह की समस्या का गांव में ही फैसला होता है। यह लोग सरकारी कचहरी में आना अपमान ही नहीं समझते बल्कि देवता की मर्जी के विरुद्ध कार्य समझते हैं, जिसे वे किसी भी हालत में करने को तैयार नहीं होते यदि कोई सरकारी अदालत में जाए तो उसे पच्चीस रूपये जुर्माना होता है। और साथ ही उसे बरादरी से बहिष्कृत किया जाता है अपने लम्बे इतिहास में शायद ही कोई उदाहरण हो जब कोई व्यक्ति कुल्लू अदालत में चारा जोई के लिए आया हो ।

यदि दो पक्षों के बीच झगड़ा समाप्त न हो और ज्येष्ठांग का फैसला किसी पक्ष को मान्य न हो तो, "छाबे पोणा" अर्थात् देवते के दरबार में अपील का उपबन्ध है जिस का निर्णय अन्तिम और सर्वमान्य है। सम्बन्धित पक्ष 'छाबे पोणा' के लिए जाने से पहले ज्येष्ठांग से इस उद्देश्य से इजाजत लेता है। ज्येष्ठांग की आज्ञा मिलने पर वह देवता के आध्यात्मिक निर्णय के लिए देवता के मंदिर में जाता है। देवता का प्रवक्ता 'गूर' पक्षों से दो एक ही आयु के एक बराबर एक ही तरह के दो बकरे मंगवाता है। मंदिर के सामने दोनों बकरों को दो खुटों से बांध दिया जाता है। सभी लोग दूर दूर चारों तरफ बैठ जाते हैं । दोनों पक्ष अपने अपने बकरे के पास घुटनों के बल सिर जमीन पर टिका कर ऊंधे मुंह बैठ जाते हैं। दोनों के ऊपर कपड़ा डाल दिया जाता है। देवता का गूर चावल के दानों में मंत्र फूंक कर बराबर बराबर दोनों बकरों के दोनों कानों में डालता है और छोड़ देता है। थोड़ी देर के बाद जो भी बकरा पहले चारों तांकों को मजबूती से टिका कर अपना सारा शरीर हिला दे जिसे स्थानीय भाषा में बिझणा कहते हैं। उस का मालिक हार जाता है। दूसरे बकरे का स्वामी जीत जाता है। हारे हुए बकरे को काट कर नदी में फेंक देते हैं। दूसरे बकरे को काट कर गांव वाले सभी मिल कर खाते हैं । जिस में दोनों पक्षों को भी शामिल होना पड़ता है यहां जुर्माना की अदायगी के बाद दोनों पक्षों को पुनः मिलाया जाता है। यह इस लिए कि छोटा सा गांव इस तरह के झगड़ों के कारण विरोधी गुटों में न बंट जाए।

इस प्रकार हजारों वर्षों से आ रहा मलाणा का स्वराज्य न केवल भारत की प्राचीन लोकतन्त्रात्मक पद्धति का जीता जागता आदर्श है, वरन् इस बात का भी साक्षी है कि धर्म अनुशासन और विश्वास की आस्थाओं पर आधारित प्रशासन हर प्रकार के बाह्य प्रभावों और आन्तरिक संघर्षों के मुकाबले में सर्वदा सुस्थिर और सुदृढ़ रहता है।

जिला भाषा अधिकारी,
परीमहल, कसुम्पटी,
शिमला-9

महासू के रोहड़ू क्षेत्र की कुछ लोकोक्तियां

—आशा चौहान

महासू क्षेत्र हिमाचल प्रदेश की शिमला पर्वत माला का एक प्रसिद्ध सांस्कृत क्षेत्र है। प्रदेश को राजधानी शिमला से उत्तर की ओर इस क्षेत्र की सांस्कृत सम्पदा एक सीमा तक अपनी प्राचीन परम्परा को अक्षुण बनाय हुय हैं। सांस्कृत सम्प्रदा की अभिव्यक्ति अनेक माध्यमों से होती है। उनमें से एक माध्यम है लोकोक्ति। जनता के सामूहिक अनुभव जब भाषा की सघनता के साथ अभिव्यक्त होती है और वह सघन भाषा जीवन के सत्यों और कथ्यों को अपने में संजोए रखती है तो लोकोक्ति स्थिर रहती है।

महासूई के रोहड़ क्षेत्र की कुछ लोकोक्तियों में यहां सामान्य पाठकों की जानकारी के लिये दे रही हूं।

लोकोक्तियां

(1) आधली रो ओरु गासड़ू रो पोरु

रोटी का आधा भाग अपनी ओर और एक छोटा टुकड़ा दूसरे को

(इस लोकोक्ति का प्रयोग समय देखकर बदलने के प्रसंग में होता है! इस लोकोक्ति में प्रयुक्त "गासड़" का अर्थ है रोटी का छोटा टुकड़ा)।

(2) आपखे गरेशटू ओरी खे ज्ञान

अपने आप दिमाग में गोबर भरा होना तथा दूसरों को ज्ञान देना!

(इस लोकोक्ति का प्रयोग "औरों को उपदेश आप न करें प्रवेश के प्रसंग में होती है। इस लोकोक्ति में "गरेशटू" का अर्थ गोबर है)।

(3) आपणी भीले चीऊं चीऊं दूजा रे भीले कुड़मणी

अपनी तरफ से तो हर चीज को देने की आनाकानी करना, दूसरे की चीज को चाहे उसका सारा टबर लें लें।

(इस लोकोक्ति का प्रयोग "दूसरे की चीज की कदर न करना परन्तु अपनी चीज की कदर करना", के प्रसंग में होती है इस लोकोक्ति में "कुड़मणी " शब्द का अर्थ सारे परिवार से है।)

(4) जे आलो न नोइया ले ता ठालों या नोइया

यदि बचपन (कोमलपन) में ही काम नहीं सीखेगा तो वह बुढ़ापे (सख्त) में भी नहीं सीख सकता।

(इस लोकोक्ति का प्रयोग समय के साथ साथ काम सीखने के "प्रसंग में होता है। इस लोकोक्ति में आलो शब्द कोमलता के लिये तथा ठालो शब्द (सख्ताई) के लिये आया है)।

(5) ओडरा खाणा पोडरा घुराणो

मुंह के पास प्रशंसा करना तथा पीछे से निन्दा करना।

(इस लोकोक्ति में "खाणों" शब्द का अर्थ प्रशंसा तथा "घुराणो" शब्द का अर्थ (निन्दा करने में प्रयोग होता है)।

(6) घर-घर माई घर घर बापू

अपने घर में मतलब के लिये प्रत्येक घर मे कोई न कोई रिश्ता निकालना!

(7) एकी आंखो रो देखुणो

एक आंख से देखणा

(इस लोकोक्ति का प्रयोग एक मात्र सहारा के प्रसंग मे होता है।)।

(8) हौल न खुबो ता शोमायो ताच्छणो

हल खेत में नहीं घुसा तो जुआ को काटना

(इस लोकोक्ति में का प्रयोग "गुस्सा किसी पर उतारना किसी पर के प्रसंग में होती है। इस लोकोक्ति में शोभायो' शब्द उसके लिये आता है, जो हल जोतते समय बैलों की गर्दन पर लगाया होता है जिसे हिन्दी में "जुआ" कहते हैं)।

(9) जिनी बिती ताऊंले दाइयां तीणी बीती मूले

जैसी तेरी साथ बीती है बहिन वैसी ही मुझ पर

(इस तरह लोकोक्ति का प्रयोग" एक ही दुःख में दुःखी होना" के प्रसंग में होता है। इस लोकोक्ति में "दाइयां" शब्द का अर्थ 'बहिन' के लिये है)।

(10) बोशाड़ भेरे थोबड चेका आपणों काज कोरा बाढऊं रो

बांगने वाली भेड़ मुंह में अपने चोट लगाती है और काम सबका करती है। अर्थात् बहुत बोलने वाला इन्सान डांट भी खाता रहता है और काम भी सभी का करता है।

(इस लोकोक्ति में "थोबड़" शब्द का अर्थ मुंह से है)।

(11) बिराली रे पीठ किआ लागा थौनी

बिल्ली की पीठ नीचे कैसे लग सकती है

(इस लोकोक्ति का प्रयोग "अपना कसूर होने पर अपना कसूर न मानना" के प्रसंग में होता है)।

(12) केभी रोज बिग्राली बाकरा के भी शुकी पाकी

कभी रात को रोज बकरा (मीट) पकाना और कभी सुखी ही (खानी)।

(इस लोकोक्ति का प्रयोग "वक्त की बाजी" के प्रसंग में होता है। इस लोकोक्ति में "बिग्राली" शब्द का अर्थ है "रात"

(13) जेजे बाट आगली गई सेजे बात पिछली गाई

जौन सा रास्ता आगे को गया है वही रास्ता पीछे को गया है (इस लोकोक्ति का प्रयोग "करे कोई भरे कोई' के प्रयोग में होता है) !

(14) जीभ घिनालु हाथ चुनालू

जीभ तो मीठी है (परन्तु) दिल से कपट है।

(इस लोकोक्ति का प्रयोग" मुंह में राम राम बगल में छुरी" के प्रयोग मे होता है । इस लोकोक्ति में "घिनालू "शब्द का अर्थ है "मीठी" तथा "चुनालू' शब्द का अर्थ "दिल "

(15) कुलां देखियो आनणें छेऊड़ी मूला देखियो पीणो पानी

कुल को देखकर औरत लानी चाहिए तथा पानी की उत्पति का स्थान देखकर पानी पीना चाहिये।

(इस लोकोक्ति का प्रयोग" हर काम को सोच समझ कर करना" के प्रसंग मे होता है)।

(16) थौनी बेशडु दाढ़ी थौसदं

नीचे बैठते ही दाढ़ी खींचना

(इस लोकोक्ति का प्रयोग हर काम मे शीघ्रता करने के प्रयोग में होता है। इस में थौसदूं का अर्थ है 'खींचना')।

(17) भोटा रा बोड़ा

भरट के बड़े (भल्ले)

(इस लोकोक्ति का प्रयोग "भुख लगने पर सुखी रोटी भी अच्छी लगती है" के प्रसंग में आता है ! इस लोकोक्ति में "भोटा" शब्द "भरट की दाल" से है)।

(18) धौंनु हो लो ता पौंनजा लाई सात

धनुष होगा तो (उसमें) सात डोरियां लगा सकते हैं।

(इस लोकोक्ति का प्रयोग "दाम बनाये काम " के प्रसंग में आता है। इस लोकोक्ति में "पौंजा" शब्द का अर्थ "डोरी" (प्रत्यंचा) है।

(19) भिरो ता भिरो फिरो भी

किसी काम को शुरू तो कर दिया है परन्तु उसके बारे में सोचा भी है

(इस लोकोक्ति का प्रयोग "बिना सोचे समझें कार्य करने " के प्रसंग में आता है इस लोकोक्ति में "फिरी" शब्द का अर्थ है "सोचना"।

(20) ओडी लाई मोना री मोनोली, आछी होआ घोरा का बुलका कदोली

ऐसे तो मन इच्छा (अच्छे अच्छे पकवान कर रहा है इससे अच्छी तो घर में साग के साथ कदोली (कोदे के आटे की रोटी) है।

(इस लोकोक्ति का प्रयोग "हवाई किले बनाना" के प्रसंग में आता है । इस लोकोक्ति में "मोनोली' शब्द का अर्थ है अच्छे अच्छे पकवानों की इच्छा" तथा बुल्का का अर्थ है "हरी सब्जी" (एक प्रकार का साग) है ।

(21) मां रे सामने मांऊसे पुराजणे

मां के सामने मासी की निन्दा करना।

(इस लोकोक्ति का प्रयोग किसी व्यक्ति की उस के सम्बन्धी के पास निन्दा करने के प्रसंग में आता है । इस लोकोक्ति में "पुराजणे" शब्द का अर्थ है (निन्दा करना)।

(22) भीतर न मानदो गाजी काक, बाहर न मान्दो छोलिन्डो

अन्दर बुद्धिमान (बजुर्ग) चाचा जी नहीं माने और बाहर बेशर्म (कोई भी व्यक्ति) नहीं मानता है।

(इस लोकोक्ति का प्रयोग "आगे कुआं पीछे खाई" के प्रसंग में आता है। इस लोकोक्ति में "गाजी" शब्द का अर्थ है "बुजुर्ग या बुद्धिमान", "काक" शब्द का अर्थ है "चाचा" तथा छोलिन्डो" "शब्द का अर्थ है "बेशर्म" (व्यक्ति)

रोहड़ू खाटला रो भाट

रोहड़ू खाटल (नदी का किनारा) का पण्डित।

इस लोकोक्ति का प्रयोग "चंचल मन का व्यक्ति" अर्थात् जिस का मन एक जगह स्थिर न हो।

(इस लोकोक्ति में "खाटल' शब्द का अर्थ है "नदी का किनारा" तथा "भाट" शब्द का अर्थ है "पण्डित"। यह लोकोक्ति इस कहानी के आधार पर गढ़ी गई है। एक बार एक भाट (ब्राह्मण) रोहड़, नदी के किनारे खड़ा होकर शाम के समय सोच रहा था कि यदि 'नावर' (रोहडू तहसील का एक परगना) में जाएं तो वहां कड़ी और चावल मिलेंगे। यदि 'छुआरा' (एक अन्य इलाका) में जायें तो वह बढ़िया मीट मिलेगा। यही सोचते सोचते उसको वहीं पर रात हो गई, वह न तो 'नावर' जा सका न 'छुआरा' उस समय से यह लोकोक्ति कही जाती है।

1. लोकोक्तियां और मुहावरे लोकभाषा की रीढ़ हैं और इसलिए लोक भाषा में इनका प्रयोग बाहुलय है। लोकभाषा में लोकोक्तियों द्वारा सजीवता और स्फूर्ति पैदा होती हैं । ये भाषा का शृंगार हैं ।

—डा0 विमलेश कान्ति ।

भाषा एवं संस्कृति विभाग,
हि0प्र0 शिमला-171009

कांगड़ी लोकसाहित्य में जन्म गीत

—विमला कुठियाला

जीवन एक संगीत है । सृष्टि का कण कण संगीतमय है। नदी, नाले व झरने अपने लक्ष्य बिन्दु की ओर मधुर कल कल ध्वनि से निरन्तर प्रवाहित हो रहे हैं। पक्षियों के कलरव में भी संगीत की अनुपम "लय" है। ठीक इसी प्रकार मानव के कटुताओं एवं विकटताओं से भरपूर नीरस जीवन को संगीत ही गति प्रगति व सरसता प्रदान करता है लोक गीत संगीत का ही देशज रूप है। अर्थात् भिन्न भिन्न प्रदेशों के लोक गायक जन मानस की कोमल भावनाओं को व्यक्त करने के लिए लोक भाषा में इन गीतों की रचना करते हैं। ये लोक गीत समय समय पर गाए जाने वाले अनेक प्रकार के हैं। जन्म से लेकर विवाह तक तथा जीवन भर ये मानव में नव प्रेरणा का संचार करते रहते हैं। प्रत्येक मनुष्य अपना जीवन आनन्द से व्यतीत करना चाहता है। दिन के परिश्रम के बाद संन्ध्या समय जब यहां के लोग परस्पर मिल बैठते हैं तो हिमाचल की सुरम्य घाटियां लोक गीतों से गूंज उठती हैं। वे सारी थकान को भूल कर आनन्द विभोर हो जाते हैं।

ऋतु गीत, बलिदान गीत, वीर गीत, झूले के गीत, नन्द-भाभी संवाद गीत, प्रेम-गीत, विरह-गीत सास-बहु के गीत हमारे सामाजिक परिवेश का यर्थाथ रूप प्रस्तुत करते हैं। हिमाचल के जिला कांगड़ा में बालक के जन्म से पूर्व, जन्म होने पर तथा हर जन्म दिवस पर गाए जाने वाले लोक गीतों की सरिता न जाने कब से बह रही है। पति अपनी नवविवाहिता पत्नी से जो मां बनने वाली है मीठी चुटकी लेते हुए पूछता है :–

चन्द घनेरड़ी रात अजी रामा चन्द घनेरड़ी....रात
मरूए छौंआं कौन खड़ी अजी हां..........मरूए छौंआं..

पत्नी—तू सहूकारां दा पुत अजी श्यामा तू सहूकारां दा पुत
गरीबां दी धियो खड़ी अजी हा गरीबां दी धिओखड़ी

पति—जे तू गरीबां दी धियो अनी राधे जे तू गरीबां दी धियो
पौड़ी पौड़ी आवो चढ़ो अजी हां...........पौड़ी आवो चढ़ी
खेलदी थी सैंयां दे नाल अनी राधे खेलदी थी सैंयां दे नाल
सैंयां सरदार कि हुण कें चुप खड़ी अजी हां.................

पत्नी—बड़ी भारी सरमां दी बात अजी स्यामा बड़ी भारी
किसे संग कही न जावे अजी हां हां किसे....................

पति—मेरा तेरा बड्डा पियार अनी राधे मेरा तेरा बड्डा पियार
मेरे संग कहियो देणी अजी हां हां....................

पत्नी—कंढ्डी गया लसकार अजी सामा कंढ्डी गया लस..............
जंघे बांहे संलपड्या अजी हां हां..................

कुछ दिनों के पश्चात पत्नी का मन खटे मीठे फल खाने को करता है। इस मनोवैज्ञानिक स्वाभाविक कोमल भावना को व्यक्त करने के लिए लोक गायक निम्न पंक्तियों का सहारा लेता है :–

कोई बैंरी दे बैंर ल्याओ मेरा मन बैंरां जो............
सस्स सै मेरी बैंरां जो गई है ....
टेरन टेरी घर आई सै तां टेरन टेरी घर आई मेरा...
जठाणी सै मेरी बैंरां जो गई है—जठाणी सै....................
मैंजर कर घर आई सै तां मैंजर कर ....मेरा
नणंद सै मेरी बैंरां जो गई है ....
गुड़ियां खेली घर आई सै तां गुड़ियां खेली घर
कंत सै मेरा बैंरां जो गैया ....
धोती दे लड़ें बन्न ल्याया सै तां धोती दे............. मेरा
धोती दे लड़े दे में नाईओ खाणे......... ....
सड़ेयो गल्यो मैं नहीं खाणे.......................
उपरे तें तोड़ी ल्याओ अजी तुसां छक्कु च पाई ल्यायो
मेरा मन बैंरां जो...............कोई..........

समय तो पंख लगा कर उड़ता है। आखिर वे दिन भी निकट आ गए जिन का प्रबल उत्कष्ठा से इन्तजार किया जाता है। हल्की सी प्रसव वेदना का आभास पाते ही कोमलांगी पत्नी पति से गांव के घर में रहने वाली सास और नणद को बुला लाने के लिए आग्रह करती है जल्दी ही आ जाना देर मत लगाना :–

भादू महीने दी रैंन कि बिजली लसाके रे—
अरे पिया हो घोड़े अस्वार कि सस बला ल्यायोरे
अरे पिया हो घोड़े अस्वार कि नणंद बलाल्यायो रे

पति भी अंधरी रात, गर्जते हुए बादलों की और कड़कती हुई बिजली की परवाह किए बिना, घोड़ा दौड़ाता हुआ गांव जा पहुंचा। मां और बहिन के चरण स्पंश करके बोला :–

तू ही मेरी माता समाता तू ही मेरी तन की रे
अरी माता अम घर नार छ्लाए
कि दर्द बड़ा ल्याओ रे.........अरी माता...........
तू ही मेरी भैंण सभैंणं तू ही मेरी तन की रे,.............
अरी भैंण अम घर नार छ्नार,
कि दरद बड़ा त्याओ रे........ अरी भैंणे अम............

यह सुन कर कौन मां बहिन ऐसी होगी जो सहानुभूति तथा सहृदयता प्रकट न करेगी। प्रसन्न होकर कहने लगी क्रमश : :–

तू ही मेरा पुत्र सपुत्र तू ही मेरा तन का रे
अरे पुत्रा तें रख्या मेरा मान,

कि तू जिएं लख बरी.......... ....
तू ही मेरा बीर सवीर, तूही मेरा तन का रे
अरे वीरा तें रख्या मेरा मान,
कि तू जिएं लख बरी......... अरे ....

वास्तव में ईश्वर भी उन्हीं घरों में सुख समृद्धि की वर्षा करता है, जिस में मां और बहिन को समुचित आदर और सम्मान समर्पित किया जाता है। मां बहिन आकर जब बहुरानी को देखती हैं तो उन की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहता है। नणंद भाभी से मनुहार करती है :-

जो नणंदा भावो दा प्यार दोनों चरखा कतदियां जी
करदी है बोल करार, जमे भावो पुत बधे तेरा गीत,
बधे परिवार, कंगण मैं तां लै लैवां गी जी............

जन्म से ही बच्चे को सत्यावादी महान् पुरूषों के नाम से विभूषित किया जाता है ताकि बड़ा हो कर वह भी उन गुणों को धारणा कर सके क्योंकि नाम का बालक पर बहुत गहरा प्रभाव होता है। लोक गायक की पंक्तियों में :-

दसवें महीने गोरिया हरिचन्द जाया,
दसदी रही पैरे कंडा जी हां
दादुए दे अंगणे बज है बधाई,
दुनिया दुवा लेई आई जी हां
ताउए दे अंगणे बज्जि है बधाई
दुनियां दुवा लेई आई जी हां–

धीरे धीरे यह खुशखबरी सारे नगर में फैल गई है। लोग बधाई देनें लगे। रागी गाने लगे :

मेरिए स्यूने पलंगड़िए खपड़े चारों पौए.........2............
जित बैंठियड़े दो जणे त्रीजड़ा नारायण आया............
जणी ठंडड़ी होई सौणा देयां सस्सुड़िए मेरी माए
किथ्रां सौंए गी सुहागणी लागियां दे लाग दुआयां.........किजा.......
लाग मंगो दादुए दादिया तें जिना घर बज्जि है बधाई
लाग मंगो ताऊए ताइयां तें जिना घर बज्जि है बधाई
लाग मंगो नानुए नानियां तें जिना घर बज्जि है बधाई
दादु खोल बंठा बोरिया डुम्मां भट्टां बंडदा बधाइयां
ताऊ खोल बंठा गट्ठड़िया डुम्मां भट्टां बंडदा बधाइयां
नानु खोल बंठा बोरिया डुम्मां भट्टां बंडदा बधाइयां

उक्त लोक गीत में रिश्ते के अनुसार सभी को प्रसन्नता होती है बालक के जन्म पर और सभी यथाशक्ति चारणों, भाटों और बधाई देने वाले लोगों को धन, वस्त्र, गुड़, शक्कर आदि बांटते हैं। अब प्रसव कक्ष में अपनी

सेविका के साथ जच्चा भी नवजात शिशु को देखकर फूली नहीं समाती। पुत्र रत्न को प्राप्त कर वह असह्य प्रसव वेदना भी भूल जाती है। इस प्रसन्नता में उस का प्रियतम भी हिस्सेदार है। वह सेविका के पास पति को संदेश भेजती है।

जाई आखो जिस छैले जो छैल भहिमिए जो
अम घर जरम्या भेजदा पुत खोलो दम्मां बोरियां
पति कहता है दम्म बंडे मेरा बाअकि बड्डा भरोअ जी
हम तुम निकड़े नदान बंडी नहीं जाणदे
पत्नी जाई आखो जिस छैले जो छैल भहिमिए जो
अम घर जरम्या पूत बंडो गुड़े रयोड़ियां
पति गुड़ बंडे साड़ी माई कि बड़ी भरजाई जी
अम तुम निकड़े नादान बंडी नहीं जाणदे ।

ठीक भी है सम्मिलित परिवार में घर के बड़ों को बड़पन तथा मुख्तारी देनी ही चाहिए। इसी से परिवार का कल्याण होता है।

इस खुशी के अवसर पर सौभाग्यवती नारियों का झुण्ड भी एक स्वर में गाने तथा बच्चे को आर्शीवाद देने लगा :-

बौए नन्दे दे जरम्या पूत्त जाया गोरिया गोद भरी
ओ तां जरम्या पूत्त सपूत सईयो इक बात सुणी
ओ तां आइयां बरिज दियां नारीं सोलह् संगार करी
ओ तां गावण लगियां गीत मंगला चार करी
ओ तां देवण लगियां असीस जियो बाला लख बरी

जब जन सागर उमड़ आया और प्रसन्नता की लहरें हिलोरें मारने लगीं तो घर का मुखिया भी बाबा नद की भांति दानशील बन गया। इस अपूर्व दानशीलता का वर्णन लोक गायक इस प्रकार करता है :-

नंद करदा हैं गांई दे दान दुधां दे मट्ट भरी
नन्द करदा है लेफां दे दान पलंग नुआरी बुणी
नंद करदा है वस्त्रां दे दान सुच्यां जड़त जड़ी
नंद करदा है सुच्यां दे दान थालां दे थाल भरी

उक्त लोक गीत लोक जीवन के वैभव का प्रतीक है।

घर के बजुर्ग जानते हैं कि जीरा जच्चा और बच्चा दोनों को स्वस्थ रखेगा, वह पहले ही घर के पिछ-वाड़े में बीज दिया गया है। निम्न लोक गीत की पंक्तियां इसी आशय को व्यक्त कर रही हैं :-

जीरा तां बीजण मैं चली फुल्ल जीरा लै
सौहरे दे पछवाड़ सुहागण जीरा लै
जीरे तां लरजां छोडियां फुल्ल जीरा लै
आई रहियां अगवाड़ सुहागण जीरा लै

सस्सु कहे नूंए जीरा लै फुल्ल जीरा लै
देयां मैं अटल सुहाग सुहागण जीरा लै
जीरा तां सानू कौड़ा लगे जी कसैला लगे
साड़ा कौण घसे, साड़ा कौण पिए
खाइए तां अल्लीर दाख, दुधे साड़ा झंड़ला पिए
खाइए तां खिझणी दा भत्त दुधे साड़ा झंड़ला पिए

अबोध बहु जीरे के स्वास्थ्य प्रद गुणों से सर्वथा अनभिज्ञ है, परन्तु समझदार सास ससुर, जानते हैं कि इस से प्रसव काल के सुधरे हुए शरीर में जीवन भर कार्य शक्ति बनी रहेगी। स्वस्थ रह कर ही यह बच्चे का पालन पोषण ठीक ढंग से कर सकेगी।

श्वसुर तथा जेठ आदि किस प्रकार बहू को जीरा पीने को कहता है निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है :-

सौरा कहे नूंए जीरा लै फुल्ल जीरा लै
देयां मैं घरे दा राज सुहागण जीरा लै
जेठ कहे भाबो जीरा लै फुल्ल जीरा लै
देयां मैं घरे दा अद्ध सुहागण जीरा लै
देर कहे भाबो जीरा लै फुल्ल जीरा लै देयां मैं खिन्नुए दी खेल सुहागण जीरा लै
नणंद कहे भाबो जीरा लै फुल्ल जीरा लै
देयां मैं खिन्नु दी खेल सुहागण जीरा लै

परन्तु वह सभी को एक ही उत्तर देती है।

जीरा तां सानु कौड़ा लगे जी कसैला लगे, साड़ा कौण घसे
साड़ा कौण पिये खाइए तां अल्ली अल्ली दाख दुधे साड़ा झंड़ला पिए
खाइए तां खिझणी दा भत्त दुधे साड़ा झंड़ला पिए

नवजात शिशु बहुत रोता है, हर समय मां की निकटता चाहता है मां उठा कर पुचकारती है, थपथपाती है प्यार से भरे स्वर में लोरी गाती है।

कौण कड़ावे तैनूं पालणा मेरे बालका
कौण देवे तैनूं लोरी वे, लोरी लै बालका गलफेरी
जीवण जोगया, तेरी लोरी साडा चौ वे-
दादु कड़ावे तैनूं पालणा मेरे बालका, दादी देवे तैनूं लोरी वे
ताऊ कड़ावे तैनूं पालणा मेरे बालका, ताई देवे तैनूं लोरी वे
नानू कड़ावे तैनूं पालणा मेरे बालका, नानी देवे तैनूं लोरी वे
मामा कड़ावे तैनू पालणा मेरे बालक मामी देवे तैनू लोरी वे
लोरी लै बालका गलफेरी जीवण जोगया
तेरी लोरी साड़ा चौ वे

अब भी बालक का रोना बन्द नहीं हुआ तब मां सोचती है कि शायद उसे पिता का अभाव खटक रहा है। वह अनुरोध भरे स्वर में गाती है :-

मैं लेई न जाणा वो रंजेटया देई न जाणा लोरी बंबीआ
तू अन्दर आई जा वो रंजेटया मिली ने देइए लोरी
तू अन्दर आई जा वो रंजेटया तैनूं कीदी चोरी बंबीआ

वह अपने माता पिता से शर्माता हुआ उनके सामने अन्दर जाना या बालक को लेना नहीं चाहता था, कहता है :-

मैं किकर औबां नी गोरी मेरा बौ खड़ोता बीया बंबीया
तू हुक्का भरी देवो रंजेटया अन्दर आई जा चोरी बम्बीया
मैं कीकर औंबा नी गोरी मेरी बाई खड़ोती बीया-बम्बीया
तू पीढ़ी डाई दे वी रंजेटया अन्दर आईजा चोरी बम्बीया
मिली ने देइए लोरी बम्बीया

जब पिता ने अन्दर जा कर बच्चे को लोरी दी तो वह चुप हो गया। वे पुत्र को प्राप्त कर धन्य हो गए थे और अलौकिक सुख का अनुभव कर रहे थे। पति ने जीरे का लाभ तथा स्वास्थ्यप्रद गुणों का उल्लेख किया:—

कंत कहे नाजो जीरा लै फुल्ल जीरा लै
देयां मैं बेसर कढाई सुहागण जीरा लै
पत्नी जीरा तां सानु अच्छा लगे,
सांनु मिठड़ा लगे, पियां कटोरे चार,
जीरा सांनु भिढड़ा लगे।

वह जानती थी कि पीछा तो पी कर ही छूटेगा। फिर सोचने लगी कि यदि जीरा इतना उपयोगी था तो उसे पहले ही पी लेना चाहिए था। अब वह पति से कहती है कि जिस प्रकार फल लगने के पश्चात् वृक्ष की डालियां झुक जाती हैं उसी प्रकार अब हमें भी परिवार में हंसते खेलते हुए नम्र बन कर रहना है। क्योंकि चार दिनों की यह जिंदगी है, दुनियां आनी जानी है, क्या ले जाना है इस संसार से। निम्न पंक्तियां इसे सुन्दरता से व्यक्त कर रही हैं:—

ए हसणु खेलणु घर आया मेरे प्यारया
हसणा खेलणा मंदा नहीं बोलणा,
क्या लेई जाणा संसार दा है............

पति पूछता है सब प्रकार की सुख समृद्धि के लिए घर में किस किस वस्तु की आवश्यकता होती है:-

मैं तुब पुछना कुल बहुए सबराइए
क्या बहुए चाहिवा आज बी है...........
पत्नी तिन तां वस्तु प्यारियां मेरे प्यारया........
दुध पुत्त अटल सुहाग बी है........
तिन तां वस्तु मैं मंगा मेरे प्यारया
जे परमेसर देग बी है ....

tharahkardu.in
Scanned with CamScanner

ए सस्सड़ चाहिदी सणे सौरे मेरे प्यारया
खिन्नु खलेंदड़ा देर बी है............
अम्मड़ चही दी सणे बौंए मेरे प्यारया
तीर खलेंदड़ा वीर बी है.........
कंत जी चाहीदा सणे सजा मेरे प्यारया
कुच्छड़ पुत्त झंड़ोलणा है...........
एडडो हौली तें कीती परमेसरा
जेहड़ा फुल्ल गुलाब बी है...........

कितनी सुन्दर भावना है नवप्रसूता गृहणी की अपने परिवार के प्रति। बेटी दोनों कुलों की शुभचिन्तिका व शान होती है। इसी लिए वह ईश्वर से दोनों वंशों की परिपूर्णता की मंगल कामना करती है। पुत्र जन्म की बधाई देने के लिए अब नारियों की एक और टोली आ पहुंची। हास परिहास भी अच्छा ही लगता है समय-समय पर। लोक गीत आरम्भ हुआ:—

अज साडे होलर जरम्या था गिने दिया नानकिया सुण्या था
नानी नचदी टपदी आई जाडां बाडां भनदी आई
टकयां पैंसयां बंडदी आई मेरया हीलआ रामा कि
नानिया बेच पतासे खा।
झंडझलोरुआ रामा कि मासिया बेच जलेबी खा
अज साड़े होलर जरम्या था गिने दिया मामियां सुण्या था
मामी नचदी टपदी आई, घघरी खोल डूमा गल पाई
अग्गे ढोल पिछे भराई, मेरया होलरुआ रामा
कि मामियां बेच बदारणा खा
अज साडे होलर जरम्या था गिम्मे दिया बुआ सुण्या था
बुआ नचदी टपदी आई गाज्यां बाज्यां कन्ने आई
टकयां पैंसयां बंडवी आई, मेरया होलरुआ रामा कि खेलया
बुआ के रिआ गोदा, झंडझंडोलरुआ रामा कि......

अब बुआ अपनी प्रसन्नता प्रकट करती हुई गाती है:—

डेकां फुल्लियां मेरिए माए इस सुहाणे खेत
झंला जरम्या मेरिए माए इस सुहागणी पेट
झंड़ला जिए झंडोलणा जिए, झंड़ले केरा बौ सैं जिए
झंड़ला बोलदा मेरिए माए, बाहर लोक बधाइयां आए
झंड़ला बोलदा मेरिए अम्मा पुट्टी के बंड़ पराण्यां दम्मा
झंड़ला बोलदा मेरिए दादी, नौमण सकर बंड़ मरादी
झंड़ला बोलदा मेरिए बुआ, तैं मन चिदड़ा कारज हुआ
झंड़ला बोलदा मेरिए ताई, तू बी अज जमे जुगे आई
झंड़ला बोलदा मेरिए चाची, तू तां घुंघरू पहनी ने नच्ची
झंड़ला बोलदा मेरिए भेंणें दण्ड खण्ड चूड़ला कज्जल नंणे

बालक अब ननिहाल में जाने योग्य हो गया है अर्थात पांच-छः महीने का हो गया है। बसन्त ऋतु आ गई, अमराइयों में कोयल कूकने लगी है। बहुरानी को रह रह कर अब मायके की याद आ रही है। वह कोयल के पास अपनी मां को संदेश भेजती है:—

पक्षियों की भाषा सांकेतिक रूप से समझी जाती थी।

बेटी अभी कमजोर है, नन्हे मुन्ने को ले कर कैसे आएगी? मां की ममता का तथा बेटी के प्रति वात्सल्य का वर्णन लोक-गायक निम्न पंक्तियों के द्वारा करता है:—]

उडयां नी कालिए बागां दिए कोयले
जाई बौंया बौए देश नी मेरा याणा लाल पंगूडे झूटे
जाई बोल्यां मेरिया माऊ सपुत्तिया
धिया जो लेयां सदाई नी मेरा याणा लाल पंगूड़े झूटे

माऊ ने भेजे चार कहार
पंजवा भेजया बीर नी—मेरा याणा

बेटी कहारों के साथ पालकी को और भैया को देख कर बहुत खुश हुई क्यों कि गांव के ऊबड़ खाबड़ रास्ते पर चलने से घबरा रही थी। वह प्रसन्न वदन से गाने लगी:—

कुथु उतारां जिन्हां चौंई कहारां
कुथु उतारां अपणा वीर नी मेरा याणा
बागें उतारां जिन्हां चौंई कहारां
महलें उतारां अपणा वीर नी मेरा याणा
क्या खुआणा जिन्हां चौंई कहारां
क्या खुआणा अपणा वीर नी—मेरा याणा लाल पंगूड़े झूटे
गरियो छुहारे जिन्हां चौंई कहारां
अल्ली अल्ली दाख अपणा वीर-नी मेरा याणा लाल
क्या देणा जिन्हां चौंईं कहारां
क्या देणा अपणा वीर नी मेरा याणा
चार रूपंये जिन्हां चौंई कहारां
रेशमी रूमाल अपणा वीर नी मेरा याणा

चार रुपये चार कहारों की मजदूरी? महान आश्चर्य है! किन्तु उस समय अर्थात् आज से लगभग 50-60 वर्ष पूर्व चांदी की मुद्रा प्रचलित थी चांदी का एक रुपया ही बहुत अधिक समझा जाता था। वर्तमान मुद्रा के 12 या 13 रु० के नोट चांदी के रुपये के बराबर हैं।

जब बालक पहली बार अपने ननिहाल में जा पहुंचा तो गांव की स्त्रियां नानी को बधाई देते हुए परिहास करती हैं। लोक कहावत भी है 'हसदेयां दे घर बसदे' वे गाने लगीं:–

अज रसपिनड़ी केरी रात बाल्या लोरी लै–
सैंयां गावण सगरी रात–बाल्या लोरी लै–
अनी जिस दिन गीगे जरम लेया–
अंगण बंडो सक्कर, अनी गीगे नानी बाहर निकली
मींडे मारी टक्कर, नी बकरोटे मारी टक्कर
ऊदा भन्नी सटया खोपर–बाल्या लोरी लै
अनी जिस दिन गीगे जरम लेया–
अंगण रिन्नी खीर-अनी गीगे दादी बाहर निकली
लेई गेया साधु फकीर, हर हर करदा साधु फकीर
बम्बीया अखियां वाला फकीर, ओ गया गया साधु फकीर
चिमटे आला साधु फकीर बाल्या लोरी लै–

बालक अब दादी के घर लौट आया है, वह कुलदीपक है उस के बिना घर सूना-सूना सा लग रहा था, अतः दादी ने दादा जी से कह कर उसे अपने घर बुला लिया। लो वह बैठने और घुटनियों चलने लगा है। मां को घर का काम नहीं करने देता। सबेरे साथ ही उठ जाता है। वह दही बिलोने रसोई घर में गई तब नन्हें को भी एक ओर पास में ही बैठा कर मधुर स्वर से गानें लगी:–

मेरे प्यारे नन्दलाल मंनू दहीं वरोलन देईं वे–
दिल्खा-लाल बाहर कुण कुण आए ?
दादु जी आए बौ जी आए, क्या लेई आए–
लडडु लेई आए पेड़े लेई आए, मठाइयां लेई आए हर भांति
मंनू दहीं बरोलण देईं वे-मेरे प्यारे ——
दिल्खा लाल बाहर कुण कुण आए
नानु जी आए मामा जी आए, क्या लेई आए क्या लेई आए
झगु लेई आए टोपू लेई आए, कपड़े लेई आए हर भान्ति
मंनू दहीं बरोलन देईं वे मेरे प्यारे नन्द लाल मंनू दहीं........

जब दहीं रिड़कते-रिड़कते माखन छाछ पर तैरने लगा तब ममता भरा हृदय फिर गा उठा :–

नी स्याम मेरा मंगे सबेरा उठी,
सजरा मक्खन बेही रोटी–नी स्याम मेरा मंगे सबेरा उठी
अपणे स्यामे जो मैं झगु स्यानियां–
सुच्यां सतारयां दी टोपी–नी स्याम मेरा मंगे–
अपणे स्यामे जो पढ़ना बी पानियां–
गुरुकुल कांगड़ी दी पोथी–नी स्याम मेरा मंगे
अपणे स्यामे दा मैं ब्याह् रचानियां–
बड़डे सोहे दी पोती–नी स्याम मेरा मंगे सबेरा उठी–

अपणे स्यामे जो मैं राज दुआनियां —
कंसे राजे दी गद्दी–नी स्याम मेरा मंगे सबेरा उठी
सजरा मक्खन बेही रोटी–नी स्याम मेरा मंगे सबेरा उठी।

इसे मधुर कल्पनाओं में एक वर्ष तो चुटकी मारते व्यतीत हो गया। नन्हें का पहला जन्म दिवस आ गया। घर में मिष्टान्न बनाया जा रहा है। मीठी रोटियां बांट कर रिश्तदारों व नगर की नारियों को लोकगीत गाने का निमन्त्रण दिया गया। दोपहर होते-होते युवतियां, नववधुएं, प्रौढ़ऐं और वृद्धाऐं सभी एकत्रित हो गई। घर में आज खूब चहल पहल है। सुमधुर स्वर लहरी गूंजने लगी :–

भादू महीने देया जरम्या वासुदेवे देया नंदा–
तेरी मां गोरी तेरी भैंण गोरी–वीरा तूं किजा सांवले रंग वे
तेरी मां खाए, तेरी भैंण खाए वीरा तेरिया भुखा चौवे वासु देवे
तेरी मां हसे, तेरी भैंण हसे सानूं तेरड़े हासे दा चौ वे–वासुदेवे देया........
बागां दे फेरे न जाई वेवा सुदेवे देया नंदा, बागां दे फेरे न जाई प्यारे
लोक कैंहदे कोई माली वे बासुदेवे देया नंदा–
खूआं दे फेरे न जाईं वे बासुदेवे देया नंदा–खूआं दे फेरे न जाईं प्यारे
लोक कंहदे कोई झीरवे वासुदेवे देया नंदा–
भीड़ियां गलियां नहंड़ वे बासुदेवे देया नंदा, भीड़ियां गलियां न हंड प्यारे
लोक कंहदे कोई जार वे–वासुदेवे देया नंदा......भादू महीने देया

लोकगीत लगातार एक के बाद दूसरा–लगातार गाए जाएं तभी अच्छे लगते हैं। एक समा सा बंध जाता है उस समय। वे फिर गाती हैं :—

सोयला नी सईयो मैं अज सुण्या-2-
चंद सोहे मंझ तारयां वारी चांदणी चंदे दे नाल सोयलानी
छुन्न सोहे मंझ हटडयां वारी वारंडा सैं छुम्मिया वे नाल–सोयल नी.....
कपला सोहे मंझ बछडयां वारी बूरी सैं कटडयां दे नाल–सो ....
दादी सोहे मंझ पोत्तरयां वारी बूआ भतीजडयां वे नाल सोयला
नानी सोहे मंझ दोत्तरयां वारी मासी सैं भाणज्या वे नाल सोयला
माता सोहे मंझ पुत्तरां दे वारी भैण सैं भाईयां वे नाल सोयला नी

लोक गीतों के पश्चात गिद्धे का रंग जमता है। नवयुवतियों और नई नवेली दुल्हिनों की पायल, तालियें कीं ताल पर बज उठती है। गिद्धे में गाती हैं सब ऊंचे स्वर से:—

नच्च नच्च नीं तू गीगे दी ताई,
लागियां वें लाग हुआ दे
जे तेरे पल्ले पैसा –घघरी दी बेल करा दे

इसी प्रकार वे सभी को गिनती जाती हैं। और भी :—

हार कड़ानियां डब्बी बिच पानीयां
तूं पाई लै मेरे नूं कि फुल्ले खटनालुए दा

इनां लोकां दे जली जांदे मुंह कि फुल्ल खटनालुए दा
अनों में सौरा तू नूं कि फुल्ल खटनालुए दा

एक ओर :— चन्दे दिए चांदणिए तू भर बरसाती आई अड़िए
सौरा सुता जित ओबरिया में चिलम तमाखू ल्याई अड़िया
चंदरा अंगण तिलकणा मैं
छमाक चारे पेई आड़िए-चंदे दिए

इन लोक गीतों के साथ रौनक लगा कर और सब का मन बहला कर, आगामी जन्म दिवस की मधुर आशा लेकर वे सब शक्कर या गुड़ जो गीतों की समाप्ति पर घर की बुजुर्ग स्त्री के द्वारा बांटा जाता है लेने के बाद अपने अपने घरों को चली जाती हैं।

1. "flowing dresses play an important part. The folds or such dresses carry the idea of mystry, modesty, respect and rank, women also, therefore generally put on such flowing dresses like the Sarees or gowns".
Anthropological papers, part V Jiwanji Jamshed ji Modi.

Page 84

पहाडी शब्दों की व्युत्पति—लेखराम शर्मा

शब्द	अर्थ	व्युत्पत्ति	वाक्य	अर्थ	मुहावरा	अर्थ
अलख (हलख)	पागल कुत्ते (morlid dog) का विष।	पागल कुत्ते को संस्कृत में "अलर्क" (morlid dog) कहते हैं। इसका ही विशेषण शब्द "आलर्क" है। भवभूति अपने नाटक उत्तर रामचरित में राम से कहलवाते हैं, जब उन्हें भूतकाल के दुःखद स्मारक प्रसङ्ग याद आते हैं। "आलर्कमिव विषं प्रसक्तम्" "अलख" भी सर्पविष की तरह तत्काल नहीं प्रभावित करता है, अपितु कालान्तर में। अतः आलर्क से पहाड़ी में अलख।	जे अलखुरे कुत्ते जो बन्नी लइये, तां सैं 14 दिनां बाद आपु ही मरी जांदा; या अलख पई जावे तां ठीक कुत्ते भी मरवाई देणे चाहिदे।	यदि पागल कुत्ते को बान्ध लिया जाए, तो वह 14 दिनों के उपरान्त स्वयमेव मर जाता है। कुत्तों में अलख पड़ जाने की स्थिति में स्वस्थ कुत्तों को भी मरवा देना चाहिये, अन्यथा उनके पागल होने का भी भय रहता है।	अलखुरा आदमी	1. लालची व्यक्ति या 2. अतीव कामुक व्यक्ति। जैसे:—सै भी अलखी गऊरा, अर्थात् वह व्यक्ति मात्रातीत लालची या कामुक हो चुका है।
अलणा	नमक रहित (without salt or with less salt)	वलवण से पहाड़ी में लूण, (व को उ सम्प्रसारण) नञ् समास करने पर अलूण (अलवण) जैसे प्रिय से अप्रिय, अलूण का विशेषण शब्द अलूणा, अलूणा से अलणा।	ए सब्जी अलणी ही है।	यह सब्जी तो नमक रहित ही है, या कम नमक वाली है।		
सलूणा	पक्व सब्जी	नमकीन सब्जी को पहाड़ी में सलूणा कहने का भी यही अभिप्राय है, "लवणेन सह" सलवणम् (अव्ययी	सलूणा क्या बणाउरा।	सब्जी क्या बनाई है।	छलियां री रोटी साग सलूणा।	निर्धनों का भोजन।

शब्द	अर्थ	व्युत्पत्ति	वाक्य	अर्थ	मुहावरा	अर्थ
		भाव समास)। सलवण से सलूणा।				
ऐरन	ऐसी बकरी जिसे कभी प्रसव न हो। (वन्ध्या अजा)।	संस्कृत शब्द "ईरिण" से जिसका अर्थ a desert या Barren soil होता है। संस्कृत शब्द ईरिण से ही अंग्रेज़ का Barren शब्द निकला है। बैरन के उच्चारण साम्य से पहाड़ी में "ऐरन" शब्द या ई की वृद्धि Augmentation पर आधारित एक व्याकरण नियम से भी "ऐरन" शब्द सम्भव है।	ए बकरी ऐरन ही कि सूणें वाली	यह अजा वन्ध्या है, अथवा प्रसुता होने वाली।	ऐरनी जो सूणें रीया पीड़ा रा क्या पता। (वन्ध्या को प्रसव वेदना का क्या पता)।	1. जिस तन लागे सो तन जाने, 2. जाके पैर न फटी बवाई, सो क्या जानें पीर पराई। 3. वन्ध्या नैव जानाति गुर्वी प्रसव वेदनाम्। 4. Only the wearer knows where shoe pinches. 5. He jests at sears who never felt a wound.
(2)	लोहार का एक ऐसा उपकरण, जिस के ऊपर वह अन्य औजारों का निर्माण करता है।	यह उपकरण शुद्ध लोहे का ही होता है। अतः Iron शब्द से (Made of Iron)	जमीदारा रे सारे ज्वार ऐरनी पर ही बणदे।	कृषक के सभी औजार ऐरन नामक उपकरण के ऊपर ही बनते हैं।	घणां रीयां चोटां रा पता ऐरनी जो ही लगदा (घन की चोटों का आभास ऐरनी को ही होता है)	जिस तन लागे सो तन जाने।
ऐड़	भेड़ बकरियों का समूह, झुण्ड।	एड–A kind of sheep एड : A ram	गद्दियां गे कई ऐड़ हुंदे।	गद्दियों के पास कई भेड़ बकरियों के	(1) सै बकरी ऐड़ाते बाहिर जावे	(1) जो व्यक्ति अपने समाज या

शब्द	अर्थ	व्युत्पत्ति	वाक्य	अर्थ	मुहावरा	अर्थ
		एका—A ewe. शब्दों।		समुदाय होते हैं।	तिसा जो बाघ ही खांदा।	वर्ग से बाहिर चला जाता है उसका पतन सुनिश्चित है।
		एड शब्द की सामुदायिक संज्ञा (collctivenoun) ऐड़, या भाववाचक संज्ञा।			(2) ऐड़ा पौणा यथा ए भेड़ ऐड़ा पई गई।	(2) भेड़ बकरियों का गर्भवती होना। (This ewe came in family way)
कम्मल (1)	गाय या बैल के गले के नीचे लटकता हुआ झालरदार मांस (Dewlap)।	संस्कृत शब्द "कम्बल" से, दर्शन शास्त्र का एक सूत्र भी है:— "गलकम्बलत्वं गोत्वम्" अर्थात गले के नीचे झालरदार मांस "कम्बल-कम्मल" होना गोत्व की पहचान है। उच्चारण सौविध्य के लिए पूर्ण सवर्ण और जम्मल शब्द।	कम्मल गाई या बल्दा जो ही हुंदा।	गाय या बैल को ही गले के नीचे झालरदार मांस (कम्मल) होता है।	मैस्सी (भैंस) जो कम्मल	असम्भव कल्पना, यथा-आकाश पुष्प शशकश्रृङ्ग या भेकरसना आदि उसी प्रकार यह भी।
(2)	कम्बल (Blanket)।	संस्कृत शब्द "कम्बल" से पूर्णसवर्ण। एक उक्ति भी है—कम्बलवन्तं न बाधते शीतम्,	स्याला जो कम्मल बड़ा कम्म दींदा।	शीतऋतु में कम्बल बहुत काम देता है।	सेर सम्मलू इक कम्मलू। (यह मुहावरा यात्रार्थ जाने वाले	निर्वाहार्थ जीवन की कम से कम आवश्यकता या सामग्री। मार्ग में प्रयोगार्थ कम से कम

शब्द	अर्थ	व्युत्पत्ति	वाक्य	अर्थ	मुहा0	अर्थ
		(कम्बल वाले को सर्दी नहीं सताती है)।			व्यक्ति के लिए भी प्रयुक्त होता है यथा 'सेरसमलू कने इक कमलू ता चाहिए।	वस्तुएं। सेरसमलू-खाद्यपदार्थ। कमलू-विस्तरादि के लिए।
कणियां	चावलों में टूटे हुए अंश जो प्रायः किसी काम के नहीं होते हैं।	संस्कृत शब्द कणिका- A small particle या A kind of a cornor rice से, या कण शब्द से जिसका अर्थ A grain या A particle of anything होता है।	सिम्ने धानां ते जादा कणियां ही निकल-दियां।	गीले धान से चावल निकालने पर अधिक कणियां ही निकलती हैं।	न चावल (चौल) न कणियां।	कुछ भी हाथ न लगना।
कुसना या कुसणा।	कम गर्म पानी (Luke warm) गुनगुना पानी।	"कोष्ण- Tepid, slightly warm" शब्द से	नहाणे री मौज न जादे ठण्डे न जादे तत्ते पाणिएं आऊंदी, कुसना पाणी ही नहाणें जोगा हुन्दा।	स्नान का आनन्द न अधिक गर्म, न अधिक ठण्डे पानी से आता है, प्रत्युत मन्दोष्ण जल ही स्नानयोग्य होता है।		
कूणी	घर की चारदीवारी के भीतरी भाग का एक किनारा।	कोण- A Corner शब्द से कुणि- एक किनारा (अमरकोष) शब्द से भी।	कूणियां देख कुल्हाड़ी हुणी।	एक कोणे पर देखो, कुल्हाड़ी होगी।	बहूंकूणियां ते अन्दर।	किसी बात का अपने ही घर या समाज तक सीमित रहना।
खुलाड़ा	वह स्थान जहां बैलों द्वारा गेंहू की गहाई की जाती है।	खल्वाटः- A bald शब्द से ही पहाड़ी का खुलाड़ा शब्द निकला है, क्योंकि Bald head की तरह खुलाड़े के चारों	खुलाड़े च कणका जो गांहदे।	खुलाड़े में गेंहू की गहाई होती है।	(1) सिरा रा खुलाड़ा होणा, (2) खुलाड़ा होना यथा	(1) बलातीत परिश्रम करना (To work hard) (सामर्थ्य से अधिक) (2) आय से कहीं

शब्द	अर्थ	व्युत्पत्ति	वाक्य	अर्थ	मुहा0	अर्थ
		ओर भी घास आदि होता है, और बीच में एकदम साफ (Plain)			(1) इसबारी छन्नी रे कम्मां च सिरा रा खुलाड़ा होई गया,	अधिक खर्च हो जाना। (To do any thing beyond one's capacity) (1) इस बार भवन निर्माण कार्य में अधिक परिश्रम करना पड़ा।
					(2) कुड़ीया रे ब्याह च खुलाड़ा होई गया।	(2) कन्या-परिणय में बहुत ही व्यय हो गया।
गत्त	1—गढ़ा	"गर्त" शब्द से, र को वर्ण सम्प्य से त् तथा "गत्त"	डुग्गे गत्तां रे पोल पक्के हुंदे,	गहरे गढ़ों में दबाए गए पोल बहुत मजबूत होते हैं।	तेरा पेट हाकि गत्त,	इस लोकोक्ति का प्रयोग उस-अवस्था में होता है जब कोई अधिक भोजन कर ले।
	2—अन्तिम संस्कार	"गति" शब्दस्य यथा "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति" अर्थात् पुत्रहीन की गति-गत्त नहीं होती है।	धर्मशास्त्रां रे मुताबिक पुत्ता बिने गत्त नहीं हुंदी	धर्मशास्त्रों के अनुसार अपुत्र की गति नहीं होती है।	गत्त होणा	(1) अन्तिम संस्कार ठीक रूप से होना। (2) To finish or firnish in proper way.
	3—चैन, ठहराव	देशी शब्द	तिजोबी गत्तनीं ताईं तां तेरा हत्थ जली गया।	तुझे भी चैन नहीं है, तभी तो तेरा हाथ जल गया।	गत्त न होणा	चञ्चल वृत्ति
चक्क	(1) पहिया	(1) "चक्र- A wheel of a carriage शब्द से, उच्चारण , सुविधा के लिये र् का भी "क"	(1) पुरानी कई लड़ाईयां योधे कोई हथियार नीं रैहणे पर रथा रे चक्का ने ही	(1) पुरानी कई लड़ाईयों में निःशस्त्र होने पर योधे रथ के पहिये से आक्रमण	किस्मत भी चक्का साई चलदी, कदीं उपर कदीं नीचे। अर्थ-भाग्यपंक्ति भी चक्रवत् घूमती है, कभी	

शब्द	अर्थ	व्युत्पत्ति	वाक्य	अर्थ	मुहा०	अर्थ
		ही बन गया, चक्क बन गया।	हमला करी दींदे थे।	कर देते थे।		ऊपर कभी नीचे "चक्रारपंक्तिखि गच्छति भाग्यपंक्ति" Future turns like a wheel
	(2) कुम्हार का चाक,	(2) चक्र- A potter's wheel,	(2) कम्हार चक्कफेरदा, तां घड़े बणदे।	(2) कुम्भकार चक्र चलाता है, तो घड़े बनते हैं।		
	(3) स्त्रियों के सिर का एक आभूषण, (4) उठाने (To uplift) अर्थ वाली धातु का आदेशात्मक रूप	(3) चक्र से, यह भी चक्र की तरह गोल होता है, आकृतिसाम्य से, पहले राजाओं के मुकुटों की रत्नजटित पंक्ति को चक्र चूड़ामणी A round jewel in a diadem अतः स्पष्ट है चक्र से चक्क, (भूषण)	(3) इक गीतकार रे शब्दांच "सौ रुपये रा चक्क मेरा··	(3) एक गीतकार के शब्दों "सौ रुपये रा-चक्क मेरा··		
चिफला चिफली	फिसलाहट वाला स्थान (Slippery)	संस्कृत शब्द "चिक्कणा" या- Slippery "चिक्कणी" शब्द से चिफला या चिफली शब्दों का आगमन हुआ है।	(1) पक्का होई ने चल, ए पत्थर बड़ा चिफला। (2) बरसाती जो सब जगह् चिफली होई जांदी।	(1) सम्भल कर चलो, यह पत्थर बड़ा फिसलाहट वाला है (2) वर्षा ऋतु में सब जगा प्रायः चिफलाहट वाली हो जाती है।	चिफला आदमी (ओयरा, कई बार गए पर तिनीं इक पैसा भी नी दित्ता, सैं बड़ा चिफला आदमी हा)।	ऐसा व्यक्ति जो किसी के ऋण को लौटाने में बहुत ही गंदा हो।
चिक्कड़	कीचड़, दलदल,	संस्कृत शब्द "चिकिलः"-Quagmire, aslough या mud अर्थ वाले से साहित्य शास्त्र में ल, ड को भी अभिन्न माना है, अतः चिकिलः चिक्कड़।	बरसाती जो बड़ा भारी चिक्कड़ हुंदा	वर्षतु में प्रभूत कीचड़ होता है।	(1) चिकड़ा च फसणा। (2) चिकड़ा च फसुरा यथा क्या दसिए, कोई ब्याणे जो, कोई पड़ाणे जो, बुरे चिकड़ा च फसुरे। (3) चारों लड़ चिकड़ा च फसुरे होंणे।	आपद्ग्रस्त होना विपन्न अभी ओर से संकटों से घिरा हुआ।
चुंजरा	किसी नुकिली वस्तु का अग्रिम भाग (Beaked)	चञ्चुः या चंचु (Beak) शब्द के लिये पहाड़ी शब्द "चुंज" है। "चुंज" संज्ञा शब्द का विशेषण (Adjective) "चुंजरा" बनता है। यही चुंजरा शब्द किसी भी नुकीली वस्तु के अग्रिम भाग के लिए रूढ़ हो गया है। चंचु के आकृतिसाम्य से ही इस का प्रचलन हुआ है।	किसी-किसी हथियारा रा चुंजरा बड़ा ही पैना कने बरीक हुंदा।	किसी किसी हथियार का अग्रिम भाग बहुत ही तीक्ष्ण व बारीक होता है।	चुंजरा ही छुवाणा	थोड़ा सा ही आघात पहुंचाना।
चैहता	शरारती या नटखट बालक	संस्कृत धातु "चह-To be Wicked" से चैहता शब्द निष्पन्न हुआ।	एह् मुण्डु बड़ा चैहता होई गया, इस जो मत्त सखालो, नहीं तां बिगड़ी जाणा।	यह लड़का बड़ा शरारती हो गया है इसे सभ्यता सिखलाओ, अन्यथा बिगड़ जायेगा।		
छन्न	भवन, मकान	आच्छन्न शब्द से, आदिस्वर लोप, मकान को मकान तभी कहा जाता है, जब उसे स्लेट, टीन या घास	इस गांवां रियां सारियां छन्नीं पर स्लोट हे, कक्खां वाली छन्न इक भी नीं।	इस गांव के सभी मकान स्लेटों वाले हैं। एक भी मकान घास वाला नहीं है।		

शब्द	अर्थ	व्युत्पत्ति	वाक्य			अर्थ
		आदि से ढांप दिया जाता है, अन्यथा नहीं, अर्थात आच्छन्न (Covered) कर दिया जाता है। मात्र दिवारों को कोई 'छन्न' नहीं कहता है, आच्छन्न होने पर ही छनु कहा जाता है।				
छेलू, छेला	बकरा या उसका शिशु	"छेलकः-A Goat शब्द से, बाद विशेष रूप से यह शब्द अजा-धावक के लिये ही रूढ़ हो गया	असांरिये बकरिये इब्बां दो छेलू दित्ते।	हमारी अजा ने इस बार एक ही प्रसव में 2 पुलिङ्ग बच्चे दिए।		नन्हें-मुन्नों के लिये "छेलू" शब्द का प्रयोग अपशब्द के रूप में किया जाता है। जब वे असह्य शरारत कर बैठते हैं।
झियूर	(1) झींगुर,	झिरिका- A Cricket शब्द से, सं0, हिन्दी, पहाड़ी झिरिका, झींगुर, झियूर।	(1) महा भारत री इक कथा रे मुताबक अणीमाण्डव्य ऋषिए जो इक्की झियूरा (झींगुर) रे पुच्छ भाग च तिनके देणे रे पापा ते कई साल सूली पर रेणे पया था।			(1) महाभारत की एक कथा के अनुसार महर्षि अणीमाण्डव्य को एक झींगुर के पृष्ठ भाग में तृण देने के पाप के परिणाम स्वरूप कई वर्ष सूली पर चढ़े रहने पड़ा था।
	(2) झीवर, "धीवर-Fisherman शब्द से।	धीवर, झीवर, झियूर,	(2) झियूर मच्छीयां मारने रे बड़े प्रवीण हुंदे।			(2) धीवर मत्स्यमारण में बड़े प्रवीण होते हैं।
डाटी	घास काटने का एक औज़ार दाति।	"दाति" शब्द से, दाति शब्द "दाप्-To Cut" धातु से बनता है। द का ड, त का ट बन गया। प्रमाणार्थ निरुक्त की कुछ पंक्तियां	डाटियां खुडियां होईं गईयां, घास कियां बढ्ढिये।	दातियां धारहीन हो गई हैं, घास कैसे काटें।	डाटीलाणा	किसी के विरुद्ध गुप्त रीति से कार्य करना (To Work against some one)

शब्द	अर्थ	व्युत्पत्ति	वाक्य			अर्थ
		"दातिर्लवनार्थे (लवनम्-Cutting ,लून्-To Cut) प्राच्येषु, दात्रमुदीच्येषु" निरुक्त Chapter II				
ताल	तालाब	"तलक-A large pond" शब्द से, अन्त्यंव्यजन लोप। मध्यस्वरागम।	बरसाती जो सब "ताल" भरी जांदे।	बरसात को सभी तालाब भर जाते हैं।		
दब्ब	कुशा	दर्भ-a kind of sacred grass से, भ का ब, र् को परसवर्ण, दर्भ-दब्ब।	दब्बां कुशोत्पाटिनी वासा जो पटदे, तिनां रा प्रयोग धार्मिक कम्मां जो करदे।	दर्भ का उत्खनन कुशोत्पाटिनी अमावस्या को करते हैं, उनका प्रयोग धार्मिक कृत्यों के लिये करते हैं।		
दरांता	आधी रात का समय	"अर्धरात्रिम्" (mid-night) शब्द से, बहुल प्रयोग से घिसकर यह शब्द "दरांता या अदरात्ता" रह गया है। अर्ध=अर्द, रात्र=राता=अदरांता।	दरांता होई गया, सै हली भी नहीं आया।	अर्धरात्र का समय हो चुका है, वह अभी भी नहीं आया है।	दराते रा समय (1) किती जाईए, असें ता दराते रे समैं च घिरुरे।	ऐसी परिस्थिति जिसमें आगे और पीछे दोनों ओर संकटमय स्थिति हो।
दोत	सुबह, प्रातः काल।	द्युत्-दीप्तौ प्रकाशमान होने के अर्थ वाली धातु से। "द्योत" संस्कृत शब्द से "दोत" प्रातः सर्वत्र-प्रकाश होने से।	दोत होई गया, उठो स्कूला री तैयारी (त्यारी) करो	सुबह हो गया है। उठो, विद्यालयकी तैयारी करो	(1) दोता रा भुलुरा जे संजा जो घरैं आई जावें, तां भुलुरा नी जाणना। (भूल सुधार कर लेने पर वह भूल नहीं समझनी चाहिये।	(1) अन्त भला सो भला। (2) All is well that ends well. (3) It is never too late to mend

शब्द	अर्थ	व्युत्पत्ति	वाक्य	अर्थ	मुहा0	अर्थ
					(2) रात बी बोगली, दोत फेरी जगातखाने, (बिलासपुर का अतीव प्रसिद्ध व लोक प्रिय मुहावरा)	बहुत परिश्रम करने पर भी निराशा व असफलता ही हाथ लगना । (1) भक्षितेऽपि लशुन् न शान्तो व्याधिः ।
दत्यालु	प्रातःकाल में किया जाने वाला अल्पाहार, प्रातराश (break fast)	दोत से दोत-प्रातःकाल, दोत से विशेषण शब्द दत्यालु, यथा झगड़ा-झगड़ालु, कृपा=कृपालु, दया=दयालु । अतः दत्यालु का अर्थ हुआ (1) Anything relating to the morning, या (2) Anything which is taken in the morning. यह शब्द प्रातराश के लिए इसीलिये रूढ़ हो गया ।	(1) दत्यालु पकाया कि रोटियां ही पकाई लईयां ।	प्रातराश ही तैयार किया है, या दिन का प्रधान भोजन ही बना लिया है ।		
			(2) मैं दत्यालु ही खादुरा, अलीं रोटी नीं खादुरी ।	मैंने प्रातःकालीन अल्पाहार ही किया है, अभी तक पूर्ण भोजन नहीं किया है । 'रोटी से प्रधान भोजन का अर्थ लिया जाता है ।'		
नाल्	1—बांस का तना	"नालम्" (नाल) शब्द से नाल (A hollow stalk) से इस शब्द का आगमन हुआ, केवल उच्चारण में ही थोड़ा परिवर्तन है । बांस भी बीच से पोला अर्थात् खोखला होता है। (Popular etymology. इस प्रकार भी कर सकते हैं, न+अलम्=नालम् यानि बस नहीं, अपितु बहुतलम्बा)	नाली रीयां टोकरियां, कुसियां कनै पेड़ियां बणदीयां ।	बांस के तने से टोकरियां, कुसियां और पेटिकाएं बनती हैं ।	(1) नाली साई बंदणा यथा-कुड़ीया रा ब्याहणे रा ढंग छोड़ ही सोचणे पौणा, कैं जे ए तां नाली साई बदी गई ।	अवस्था या आयु की अपेक्षा अधिक लम्बाई हो जाना । इस लड़की के विवाह संस्कार पर शीघ्र ही विचार करना पड़ेगा, क्यों कि यह बहुत ही लम्बी हो गई है ।
	2—पशुओं को घी, दूध एवं कोई औषधि पिलाने के लिये बांस का बना लगभग 1 से 2 फीट तक का साधन ।	(1) यह नाल=बांस के तने की होती है । (2) यह केवल Hollow Portion (खोखले भाग की ही बनती है ।)	नाल ल्याओ, बल्दा जो काढ़ा देणा ।	नाल लाओ, रुग्ण बैल को काढ़ा देना है ।	(2) नाली खपी जाणा	(2) किसी बड़ी बात का या जघन्य अपराध का गुप्त ही रह जाना ।
	3—घोड़े आदि के पांव में तथा जूते के नीचे लगाया जाने वाला लोहे का नाल ।	देशी शब्द	जोड़े जो नाल लुगाणे ते तिसरी मजबूती बदी जांदी ।	जूते के नाल लगवा लेने से उसकी मजबूती बढ़ जाती है ।		
	4—घराट में जल प्रक्षेप करने वाली नाली (Hydrant)	खोखली होने से	नाली ते पाणी पौंदा, तिस दबावा ते गरड़ फिरदा, तां घराट चलदा ।	नाल के पानी के दबाव से गरड़ घूमता है, तथा घराट चलता है । (इस से ही घराट Hydranlic बनता है)।		
निम्मल्	साफ-स्वच्छ	"निर्मल" संस्कृत शब्द से "निर" के "र्" का वर्णसाम्य से तथा उच्चारण सुविधा से "म्" बन गया जैसे	यरा, देखयां बाहिर बद्दल है कि निम्मल ।	अरे, देखना आकाश में बादल है या आसमान साफ है ।	निम्मल होई जाणा	कुछ भी शेष न बचना, यथा क्या दसिये, अग्ग लगी तिसते निम्मल् ही होई गया ।

शब्द	अर्थ	व्युत्पत्ति	वाक्य	अर्थ	मुहावरे	अर्थ
		चर्म से चम्म उसी प्रकार निर्मल से निम्मल ।				(क्या बताएं, आग लगने से सब कुछ ही नष्ट हो गया) ।
नौणी	माखन	"नवनीत" संस्कृत शब्द से, "व" का सम्प्रसारण, "नउ नीत" श्रो गुण, अन्त व्यञ्जन लोप, नौनी न का ण, लोक प्रयोग में श्रौ-नौणी ।	नौणी खाणे ते दिमाग बददा,	माखन खाने से बुद्धि वर्धन होता है ।	नौणी लाणा । तिस्सो भी बथेरा नौणी लाया पर सै किती मन्या ।	खुशामद करना । उसकी भी बहुत खुशामद की, पर वह कहां माना ।
पत्त	(1) पत्ता	"पत्र" शब्द ड की भी वर्णसाम्य से त् तथा "त" को द्वित्व "पत्त"	रुखां रे हरे पत्त देखने जो बड़े बांके लगदे ।	वृक्षों के हरे पत्ते देखने को बहुत सुन्दर लगते हैं ।	पत्त नी हिलणा यथा-सब तिसते नाराज थे, पर तिसरा पत्ता नीं हिलया ।	कुछ भी नुक्सान नहीं होना । सभी उससे रूष्ट थे परन्तु उसका तनिक भी नुक्सान नहीं हुआ ।
	(2) इज्जत		इस जमाने च पत्त बचाणी बड़ी मुश्किल है ।	आज के युग में इज्जत बचा पाना बड़ा कठिन कामहै ।	अपणी पत्त, अपणे हत्थ	अपना मान व्यक्ति के अपने ही हाथ में होता है ।
		(3) गन्ने के रस को एक बार की परिमित मात्रा में काढ़ने को भी देहात में "पत्त" कहते हैं ।	इवां असारियां कमांदिया रीयां कई पत्तां निकलीयां ।	इस बार हमारी ईख रस के कई कड़ाहे निकले हैं ।		
पराल	पुआल, धान का भूसा जो चारे के लिए प्रयुक्त होता है । (The dry stalk steams of certain kinds of grain)	"पलालः–लम्" शब्द से जिसका straw husk होता है । अलंकार शास्त्र के एक नियम के अनुसार "ल" व "र" "र" में कोई भेद नहीं माना जाता है अपितु इन्हें अभिन्न माना है । अतः पलाल से पराल स्पष्ट है । (प्रामाणार्थ= (See S. Darpana, Page 280edition 1973)	पराल गौंके रा बड़ा मनपसन्द चारा हुन्दा ।	पुआल (धान का भूसा) गोप्रजाति के पशुओं का अभीष्ट खाद्य होता है ।	पत्तपराल	1. निरर्थक वस्तु 2. तुच्छ वस्तु यथा= कबूल करो महाराज, ए पत्त पराल हीया । 3. निर्धन की भेंट ।
पल्ली	किसी मकान के के साथ जुड़ा हुआ छोटा सा एवं साधारण सा उपभवन	संस्कृत शब्द पल्लिः या पल्ली=hut, a small house से उसी रूप व अर्थ में पहाड़ी शब्द बन गया है ।	छन्नीं नें जे पल्ली होएं तां से वर्षा या धूप्पा च बड़ी कम्म दींदी ।	यदि मकान के साथ पल्ली जुड़ी हुई हो तो वह वर्षा तथा धूप में खुली होने के कारण बहुत उपयोगी होती है ।	पल्लियां च रैहणा	निर्धनता का जीवन व्यतीत करना ।
पिच्छ	चावल उबालने पर उनसे निकला हुआ फेन ।	निम्नलिखित संस्कृत शब्दों से पिच्छाः, पिच्छिलः लम्–ला= The scum of boild rice या lubricious उदाहरणार्थ=छन्दोमञ्जरी का पद्य= तरुणं सर्षपशाक नवौदनं पिच्छलानि च दधीनि,	पिच्छा जो भी न सटो, ए बी कम्मां री चीज है । सब्जी बणी जानी ।	पिच्छ को भी मत फैंकों यह भी काम की वस्तु है । जैसे:– इसकी भी सब्जी बन जाएगी ।	भत्ता तें पिच्छे होई जाणा तुसें बीमारा जो भी डाक्टरां गे तां ल्याए तांजे भत्ता ते पिच्छ बणी गऊरी थी । (आप रोगी को भी तब लाए, जबकि रोग असाध्य हो चुका था) ।	किसी रोगादि का असाध्य हो जाना, या किसी कार्य का बिल्कुल बिगड़ जाना

शब्द	अर्थ	व्युत्पत्ति	वाक्य	अर्थ	मुहावरा	अर्थ
		अल्पव्ययेन सुन्दरि ग्राम्यजन इष्टमश्नाति। अर्थात् प्रिये, ताजा सरसों का साग, नया भात यानी नए चावलों का पिच्छ और दही प्रभृति प्रिय वस्तुओं को ग्रामीण व्यक्ति थोड़े खर्च से खा लेता है।				
पौण	हवा, वायु	पवन शब्द से पौण व का उ सम्प्रसारण न काण इसी से पौणाहारी=पवनाहारी (वायु ही खाने वाला) आदि शब्द बनते हैं। या जैसे: भवन से भौण शब्द है उदाहरण=पंजे पांडवें मइया तेरा भौण बनाया तथावत से पवन पौण।	पौण ही नीं पुणाई कीयां करिये	हवा ही नहीं है, पुणाई कैसे करें।	(1) पौण जो देखी ने पुणाई लाणा (2) तिक्खा री जे पौण होवे तिक्खा री पणाई लाणा।	समय के अनुसार बातचीत एवं काम करना। (2) बहुमत के साथ चलना, या गंगा गए गंगा दास यमुना गए यमुना दास।
पोली	गेहूं के आटे से बनने वाला एक प्रकार का पुआ जो तेल आदि में नहीं तला जाता उसका आकार फुलके से	संस्कृत शब्द "पोली= a kind of cake से केवल "ल" का उच्चारण "ल" होता है जो पहाड़ी में संस्कृत मूल शब्दों को प्रायः हो जाता है।			घड़े जो तोड़ी ने तिसरे निचले आधा जो उल्टे करदे तिस पर "पोलियां" पकदियां	घड़े को तोड़कर उसके अधोभाग को भठी पर उल्टा करके उस पर पोलियां पकाई जाती हैं।

शब्द	अर्थ	व्युत्पत्ति	वाक्य	अर्थ	मुहावरा	अर्थ
	बहुत ज्यादा होता है। इसका निर्माण विवाह और प्रीतिभोज आदि में किया जाता है।					
फेरा	(1) हल द्वारा निकाली गई लकीर।	अंग्रेजी शब्द Furrow=the narrow trench made by a plough से फेरा शब्द आया है।	चार पंज फेरे लाए कनें हल टुटी गया।	अभी थोड़ा ही हल चलाया था कि वह टूट गया।	मोटा मोटा फेरा लगाणा	शीघ्रता से या हड़बड़ी में कोई कार्य करना।
	(2) फुटकर सामान की विक्री केलिए गांव या बाजार में घूमना	Fusrow से फेरा, फेरा शब्द से ही इस फेरे की निष्पत्ति हुई है, इसमें भी थोड़े से ही क्षेत्र में एक कोने से दूसरे कोने तक आना जाना ही होता है।	अज्ज फेरे वाला नीं आया।	क्या आज फेरी वाला नहीं आया?	फेरी या फेरा लगाणा	पीठ पर उठाकर घर घर जाकर वस्तु विक्रय।
बौंकरी	झाड़ू बुहारी (Broom mop)	"बहुकरी" संस्कृत शब्द से सतत प्रयोग से घिसा हुआ रूप बौंकरी।	सवेरे सब ते पहले घरा च बौंकरी लगानी बहुत ही जरूरी कम्म हुंदा।	प्रातः उठ कर सर्वप्रथम घर में झाड़ू लगाना अत्यावश्यक कार्य होता है।	बौंकरी फिरी जाणा	सर्वनाश हो जाना।
मत्त	बुद्धि, विवेक	"मति-Intellect sense शब्द से, और भी कई शब्द इस आधार पर बने	ठीक गल कर तेरी भी मत्त मारया गऊरी	ठीक ढंग से बात करो, तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो	मत्त मारी जाणा	to be puzzled बुद्धि विभ्रम हो जाना।

शब्द	अर्थ	व्युत्पत्ति	वाक्य	अर्थ	मुहारा	अर्थ
		हैं यथाः- गति–गत्त, तथैव मति–मत्त	बच्चे जो मत्त सखालो इस्सो मत्त नी है।	गई है। बच्चे को सुशिक्षा व सद्बुद्धि दो, इसे बुद्धि नहीं है।		
	(2) लियाकत सुशीलता	इसके पीछे भी मति शब्द ही है।				
मल्ल	(1) कुश्ती करने वाला पहलवान	"मल्ल:Wrestler शब्द का तत्सम रूप।	तुलाड़ी रे मेले च बड़े दूरा दूरा ते मल्ल आऊंदे	मलवाड़ी के मेले में बड़े दूर दूर से पहलवान आते हैं।		
	(2) किसी वस्तु पर या भाग पर अपना अधिकार जतलाना	इस "मल्ल" शब्द से मालिक भी बनता है।	इनीं यरा इयां ही मल्ल पाई ली इसरा हिस्सा ए नीयां	इसने व्यर्थ में ही अपना अधिकार जतला दिया है, जब कि इसका भाग यहां नहीं है।	मल्ल पाणा-	स्वामित्व जितलाना ।
माणु	आदमी "मां पर बलाघात"	"मानुष शब्द से अन्त्य व्यञ्जन लोप, ना काण, "मां तथा "णु" पर बलाघात व्यञ्जन लोप के परिणाम स्व–रूप ही।	मेले च बड़े भारी माणु थे।	मेले में बहुत मनुष्य थे।		किसी मनुष्य की ओछी व घटिया किस्म की हरकतों को देखकर उससे पूछा जाता है।
माणु	(2) बन्दर	"माणव=Mannikin (used in contemptuously) मानव शब्द नीच वृति व चंचलवृति वाले मनुष्यके लिए किया जाता है, जिसकी चेष्टाएं	जे बांदरा रे सामणे माणु माणु बोलिए, तां से इकठे होई, जांदे	यदि कपिसमूह के समक्ष "माणु माणु" यह आह्वान किया जाए, तो वे एकत्रित हो जाते हैं।	"तू माणु हा कि माँणु" (तू आदमी है, या बन्दर) ।	

शब्द	अर्थ	व्युत्पत्ति	वाक्य	अर्थ	मुहारा	अर्थ
		कपित हों। धीरे "मानव व का उ सम्प्रसारण और "माणु" बन्दर के लिए रूढ़ हो गया।				
मड़थली	वह स्थान जहां शव जलाए जाते हैं । (Acemetery or burning ground)	मृत स्थली या मरण स्थली शब्दों से, 'मृ' धातु से मर्+थली, र का ड या ड़ प्रायः पहाड़ी में देखा जाता है। 'मृ-To die पूर्वक धातु के साथ स्थली-थली (spot) से "मड़थली" शब्द निकला है । इसी प्रकार श्मशानघाट से 'मसाण घाट' आदि शब्द बने हैं।	भाई बन्धु भी मड़-थलीया तक ही साथ दीदे, तिसते अग्गे रा साथी धर्म हुंदा ।	भाई बन्धु भी श्मशान-घाट तक ही साथ देते हैं, उसके आगे धर्म ही साथी होता है ।	मड़थलिया लाणा,	अर्थ=मार देना ।
मिढा,	भेड़ा (Rom)	"मेंढ़:" संस्कृत शब्द का विकृत रूप	स्याला जो बर्फानी इलाके रे लोग अपणी भेंडा कने मिढे लई ने कम सर्द इलाकयां च आई जांदे ।	सर्दियों में हिमक्षेत्र के लोग अपनी भेड़ें व भेड़ों को लेकर कमसर्द क्षेत्रों में आ जाते हैं।	मिढे री जड़ल्ल	जोर की टक्कर, या बलशाली का प्रहार।
मुकलावा	विवाह संस्कार के बाद पतिगृह में निवासार्थ वधु के आगमन की रस्म ।	"मूकलाव" शब्द से 'मूकत्व लुनाति इति मूकलावः, (लू-to-cut) जो प्रक्रिया चुप्पी को तोड़े, नवोढ़ा की वास्तविक चुप्पी पतिगृह के सदस्यों के साथ इसी रस्म के बाद टूटती है।	सै गल पहले थी तां जे बाल-विवाह हुंदे थे, और मुकलावा ब्याह ते 3 या 5 सालां बाद लैंदे थे, हुण तां ब्याह ते तुरन्त बाद ।	वह बात पहले थी जबकि बाल-विवाह होते थे और 3 या 5 वर्ष बीतने पर ही विवाहोपरान्त मुकलावा लिया जाता था, अब तो विवाह के तुरन्त बाद यह हो जाता है।		
मोछ	किसी वस्तु को काटना या कई हिस्सों में काटना। (To cut in-	"मोक्ष-Falling off" शब्द से । संस्कृत से पहाड़ी में क्ष का छ– या ख बन जाता है ।	पहले चीला जो मोछी लवो, तां होर कम्म करो ।	पहले चील को टुकड़ों-टुकड़ों में काट लो, फिर और काम करना	जड़ां ते मोछणा, (समूल नष्ट करना) (किसी का सर्वनाश	

शब्द	अर्थ	व्युत्पत्ति	वाक्य	हिन्दी	मुहावरा	मुहावरा अर्थ
	pieces).	यथा: संस्कृत–पहाड़ी प्रत्यक्ष–परतच्छ क्षालन–छलणा- (To wash)				ही कर देना।)
रास	(1) राशि (मेष-वृषादि)	'राशि-(A sign of the zodiac) शब्द, से प्रयत्नलाघव के कारण अन्त्यस्वर लोप।	(1) चन्द्रमा इक्की राशी पर लगभग 2¼ दिन रैंहदा (2) "म" ते शुरू होणे वाले नाँवां री मेष रास हुंदी।	(1) चन्द्रमा एक राशि पर लगभग 2¼ दिन रहता है। (2) "म" से शुरू होने वाले नाम की मेष राशि होती।		
	(2) व्यापार में अन्न या धन की अपनी ओर से रखी गई मात्रा	"राशि-Quantity collection)" शब्द से, यथा अन्न राशि, धनराशि।	(2) ठेके च घाटा पया, फेरी तां रास भी खाई ली।	(2) ठेके में घाटे की स्थिति में फिर मूल राशि को भी खा लिया गया है।		
	(3) व्यावसायिक नृत्यनाटक मण्डली द्वारा गाँव-गाँव में खले जाने वाले लघु-नाटक या नृत्य विशेष	रासकम्-Aminor drama या रासः A kind of dance practised by dancers in the shape of Lord Krishna and the cowherds particulary the gopies or cowherdesses of Vrindavan	(3) राती जो रास देखी, बड़ा नन्द आया।	(3) रात को रास (लघुनाटक या नृत्य) देखी, बड़ा आनन्द आया।		
रूख	पेड़	संस्कृत शब्द "वृक्ष" से (1) निरुक्त नियम से "वर्ण विपर्यय" से "वृ" का वर्णविपर्यय, ऋव् (2) पाणिनि नियम से सम्प्रसारण, ऋ व् र् उ=रु (3) पहाड़ी में "क्ष" का उच्चारण "ख" या "छ" होता है। यथा=पक्ष=पख, रुक्ष=रुखा क्षेत्र=खेतर, अतः "रुख" वृक्ष शब्द से निष्पन्न है।	रुख असांरे जीवना रे धार हुंदे	वृक्ष हमारे जीवन का आधार होते हैं।	तित्थी जे रुख नीं हुंदे तित्थी एरण्ड प्रधान (जहां वृक्ष नहीं होते हैं वहां एरण्ड ही प्रधान होते हैं)	1. अन्धों में काना राजा, 2. निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते, 3. A figure among cyphers.
लज्ज	1. कूप से जल निकालने वाली रज्जु, (रस्सी)	संस्कृत धातु ला To take लाति-गृह्णाति जलम् इति, क्योंकि यह पानी को कुएं से लाती है। ला+जल=लज्ज, मूल शब्द के "आ" को पहाड़ी में परसवर्ण हो गया है। जैसे संस्कृत हिन्दी पहाड़ी (1) कार्य काम कम्म (2) अद्य आज अज्ज (3) अग्नि आग अग्ग तथैव "लज्ज" में भी हुआ है। (4) कर्ण कान कन्न (5) हस्त हाथ हत्थ	लज्ज टूटे तां सौ इलाज जे घड़ा टूटे तां क्या इलाज?	रस्सी के टूटने पर कई उपाय हो सकते हैं किन्तु घड़ा टूटने पर उसका क्या उपाय है?	(1) लज्ज टूटणा (2) गट्ठ्री लज्ज	मुख्य साधन का नष्ट हो जाना। लड़खड़ाता साधन या आधार।

शब्द	अर्थ	व्युत्पत्ति	वाक्य	अर्थ	मुहा0 अर्थ
	2. शर्म	"लज्जा" शब्द से।	जे देखिए जमाना अज्ज, तां ना किसी जो शर्म न लज्ज।	यदि दुनियां को आज देखा जाए तो न किसी को शर्म है न लाज।	लज्ज जाणा लज्ज वेचणा	बुरी तरह से अपमानित होना। घटिया काम करना, इज्जत बेचना।
बिसनी	किसी प्रकार का भी नशा करने वाला व्यक्ति।	"व्यसन" (inordinate addiction or evil) शब्द से "व्यसनी" शब्द निष्पन्न होता है। "व्यसनी" शब्द के य को इ सम्प्रसारण होने से पहाड़ी में बिसनी शब्द प्रचलित है। इसी से हुक्के आदि को "वासण-व्यसन-साधन" कहते हैं। (जैसे अमल से अमली)	सै हुक्का कदी नीं छडदा, कैं जे सै तमाखूए रा बिसनी हा।	वह हुक्का कभी नहीं छोड़ता है, क्योंकि वह तम्बाकू का व्यसनी है।	बणे बिसनी तां होई चाल मिसनी।	व्यसनी होने पर व्यक्ति का विकास रुक जाता है। एवं गतिमान्द्य (प्रत्येकक्षेत्र) में उपस्थित हो जाता है।
सलूह्या	टिड्डीदल	"शलभ- Locust "शब्द का विकृत रूप पहाड़ी में।	तिसा फसला पर जे सलह्या पई जांदी तिसारा तां सर्वनाश होई जांदा।	जिस फसल पर टिड्डी-दल पड़ जाता है उसका सर्वनाश हो जाता है।	सलह्या साई पौणा	एक साथ धावा बोलना।
सक्रांद	विक्रमी सम्वत् के महीनों का पहला दिन (First day of a month)	संक्रान्ति- The passage of sun from one Zodiacle sign into another इसी दिन से महीना शुरू हो जाता है, जबकि सूर्य का संक्रमण एक राशि से दूसरी राशि पर होता है। इसी लिए पहले दिन को 'संक्रान्द' कहते हैं।	अज्ज सकरांद है, अज्ज तां नहाई लो।		आज संक्रान्ति है, आज तो नहा लो।
हण्डोला	काष्ठनिर्मित एक प्रकार का एक झूला, जो काफी ऊंचा होता है, उसमें एक साथ कई आदमी झूलने का आनन्द लेते हैं। मेलों में इसका आम प्रयोग होता है।	"हिन्दोला" (a swing) संस्कृत शब्द से, ला का ला, द का ड।	तुलाड़ीया रे मेले च "पैनणियां बंगां मौज लैणी हण्डोले री"		नलवाड़ी के मेले में चूड़ियां पहननी हैं, और हण्डोले का आनन्द लेना है।
सलखणा	शुभलक्षणोंवाला,	सुलक्षण-शुभलक्षणयुक्त शब्द से, 'क्ष' का उच्चारण पहाड़ी में बहुधा "ख" हो गया है यथा सं0 = पहाड़ी परोक्ष = परोखा वक्ष = वख अतः सुलक्षण=सलखणा शब्द बना। इसी प्रकार कुलक्षण-कलछणा आदि शब्द भी बने हैं।	सै बड़ा सुलखणा होया।	वह बड़ा सुलक्षण-वान् हुआ है।	जम्मे पुत्त सलखणे कंदां ढै पईयां।	इस मुहावरे को कुपुत्र के लिए व्यंगात्मक दृष्टिकोण से कहते हैं। पुत्रमहाशय ऐसे शुभ लक्षणों वाले हुए कि दीवारें भी गिर पड़ीं।
सूल	(1) सिद्धांत, नियम (norms)	"असूल" उर्दू फारसी शब्द से।	आदमी जे ठीक सूलां पर रहे, तांई तस्सरी इज्जत ही।	यदि आदमी ठीक नियमों पर चले, तभी उसका मान-सम्मान है।	(1) सूलां ते अन्दर	(1) मर्यादित व्यक्ति सिद्धान्तमय जीवन यापन।
	(2) जूते की मजबूती के लिए नीचे अतिरिक्त चर्म लगाना, (जूते का तला)।	अंग्रेजी शब्द "sole" bottom of shoe-or boot से।	सूल चढ़ाई कने जोड़ा बड़ा पक्का चलदा।	sole लगा देने से जूता बहुत पक्का हो जाता है।	(2) सूलांते बाहिर।	(2) सिद्धान्तहीन व्यक्ति। अमर्यादित जीवन यापन।
सूल्	(1) एक प्रकार की पेट दर्द	शूल= To be ill or disorder धातु से।	तिसरे पेटा सूल् पई तिसाते सै मरी गया।	उसके पेट में दर्द (सूल्) पड़ी और वह मर गया।		जब कोई बहाने के तौर पर बीमारी बताता है तो उससे

शब्द	अर्थ	व्युत्पत्ति	वाक्य	अर्थ	मुहा0 अर्थ
					बड़े आदमी व्यंग्यात्मक ढंग से कहते है "तुझे क्या है, सूल (पेट दर्द) पड़ी है"।
	(2) हाथ-पैरों में अधिक ठण्ड लगना।	शूल=a sharp pointed weapon या pike की तरह कष्टदायक होने से शूल=सूल। शब्द।	सर्दियां जो सबेरे तांजे पाणी भरने जांदे तां हत्थें पैरें सूल लगी जांदी।	शीतऋतु में जब सुबह ही जल भरने जाते है तो हाथ व पांवों में सूल (शूल) लग जाती है।	
हत्थ	(1) लम्बाई का परिमापक मान, (cubit, a measure of length)	"हस्त—cubit" शब्द से, हस्त से हत्थ, संस्कृत में भी हस्त शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता इसका विवरण इस प्रकार है:— Equal to 24 angulas or about 18 inches, being the distance between the elbow and the tip of the middle finger	इक हत्थ 24 अगुंला रां या लगभग 18 इंचा रा हुंदा।	एक हाथ 24 अगुंल या 18 इंच का होता है।	
	(2) हाथ (hand)	"हस्त" शब्द से	दो हत्थ परमात्मे खरे कम्म कने परोपकार करने जो दितुरे।	दो हाथ भगवान ने शुभ काम व परोपकार करने के लिए दिये है।	अपणी पत्त अपणे हत्थ (अपना सम्मान अपने ही हाथ में होता है)।

हिमाचल की वनौषधि-सम्पदा

—दिला राम धीमान

श्री दिला राम धीमान की लिखी हुई पुस्तक—हिमाचल की वनौषधि-सम्पदा में नौ अध्यायों में वनौषधि संबन्धी काफी सामग्री संकलित करने का प्रयास किया गया है। शेष चार अध्याय शब्दावली सम्बन्धी हैं। इन में पहले में अकारादि क्रम से रोगों के हिन्दी नाम तथा उसके अंग्रेजी में पर्यायवाची शब्द दे दिये गये है। दूसरे में इसी प्रकार वनस्पति विज्ञान की वैज्ञानिक शब्दावली का संग्रह किया गया है। तीसरेमें देशी, आयुर्वेदिक व स्थानीय नामों की अनुक्रमणिका दे दी गई है। अंतिम परिशिष्ट में विवेचित वनौषधियों के वनस्पति-विज्ञान से संबन्धित नामावली को जोड़कर पुस्तक को उपयोगी सन्दर्भ दिया गया है।

प्रारम्भिक अध्याय में हिमाचल प्रदेश का भौगोलिक परिचय करा कर लेखक यहां की विभिन्न प्रकार की मिट्टी का पांच भागों में सांगो-पांग विवेचन कर देता है। यह और भी अच्छा होता है यदि वनौषधियों के सन्दर्भ में इस पक्ष का उद्घाटन किया जाता।

लेखक ने इसी अध्याय में वनस्पतिक सम्पदा की खूब छान-बीन की है। उसे उष्ण, उपोष्ण, कोष्णीय आदि कई भागों में बांटकर जलवायु आदि तत्वों के आधार पर उनका वर्गीकरण कर हिमाचल प्रदेश की वन सम्पदा की विस्तृत चर्चा की है।

दूसरे अध्याय में प्रदेश की वनौषधि सम्पदा को निचले, मध्यम, कोष्णीय तथा अल्पीय क्षेत्रों में विभक्त करते हुए जलवायु के आधार पर परिक्षेत्र के अनुसार उपलब्ध होने वाली मुख्य-मुख्य औषधियों का ब्योरा दिया गया है।

तीसरे अध्याय में वनौषधि सम्पदा के प्रादेशिक अर्थ तंत्र में योगदान की आंकड़ों सहित विस्तृत चर्चा की गई है और उसकी विपुल सम्भावनाओं को उजागर किया गया है। परवर्ती अध्याय में वनौषधि सम्पदा के निकालने (Exploitation) के लिये वैज्ञानिक सुझाव दिए गए हैं जो बड़े उपयोगी हैं। इनमें सब से महत्वपूर्ण सुझाव है वनौषधि हरबेरियम की स्थापना, शिक्षा एवं अनुसन्धान। क्या कहना न होगा कि हिमाचल में हिमाचल वनौषधि सम्पदा का भण्डार है। इस प्रदेश की आर्थिक समृद्धि के लिये इस प्रकार का उठाया गया पग दूरवर्ती नतीजों वाला सिद्ध होगा।

लगता है इसी से लेखक ने व्यापारिक महत्त्व की वनौषधियों को प्राथमिकता दी है तथा पंचम अध्याय में पैंतालीस व्यापारिक महत्त्व की औषधियों का न केवल परिचय, प्राप्ति क्षेत्र ही दिया है अपितु उसका चिकित्सा शास्त्र में महत्त्व और उपयोग का भी सरीक ब्योरा दिया है। इसके बाद अपेक्षाकृत कम व्यापारिक महत्त्व की औषधियों की चर्चा ऐसी ही गम्भीरता से की गई है। इस प्रकार छठे अध्याय में चौवन वनौषधियों का उल्लेख किया गया है। इस के अनन्तर सातवें अध्याय में सम्भावित व्यापारिक व स्थानीय भैषज्य महत्त्व की एक सौ चौसठ औषधियों का सांगोपांग ब्योरा प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार इस ग्रंथ में कुल 263 वनौषधियों का हिमाचल की दृष्टि से पहलीबार प्रस्तुतीकरण वैज्ञानिक प्रयास हुआ है।

आठवें अध्याय में उपर्युक्त चर्चित औषधियों में से नौ महत्त्वपूर्ण वनौषधियों की खेती की विस्तृत जानकारी कराई गई है। नाना उपयोगी सुझाव देकर इस विषय पर प्रकाश डाला गया है। नवम् अध्याय में वनौषधियों पर आधारित पंद्रह मुख्य उद्योगों का ब्योरा दिया गया है।

इस प्रकार लेखक ने पहली बार हिमाचल की वनौषधि सम्पदा का परिचय देकर एक उपयोगी और साहसपूर्ण कदम उठाया है। कहना व्यर्थ है कि पहला प्रयास होने पर इस संग्रह से सभी वनौषधियों के परिचय की आशा करना अधिक मांग होगी। फिर भी पुस्तक को और उपयोगी बनाने के लिये इसमें अनेक और बातों के जोड़ने की पूरी पूरी गुंजाइश है। वनौषधियों के चित्र देने से, उनके भूगोलिक परिवेश के उल्लेख (मानचित्र सहित) आदि द्वारा पुस्तक का महत्त्व (आथारिटेटिव-मूल्य) और भी बढ़ जाता। यहां पर एक बात और भी ध्यान रखने योग्य है वह नक्षत्र विज्ञान के साथ वनौषधियों का संबन्ध। आयुर्वेद और संहिता ग्रंथों में कई स्थानों पर विशेष नक्षत्र के उदय तथा अस्त आदि के समय विशेष को ध्यान में रखकर वनौषधियों या विशिष्ट वनस्पतियों को उखाड़ने, सहेजने की चर्चा भी की गई है। उसमें बहुत कुछ सारपूर्ण है। लेखक यदि इस पक्ष कोभी अपने इस संग्रह में स्थान दे पाते तो बहुत ही अच्छा होता। इधर नक्षत्र-विज्ञान के महत्त्व की स्वीकृति दिनो दिन बढ़ने लगी है। इससे किसी को इन्कार नहीं। वनौषधियों से संबंधित इस वैज्ञानिक धरोहर का उद्‌घाटन होना ही चाहिये। अब इसका समय आ गया है।

भाषा की ओर भी लेखक का ध्यान जाना चाहिये। वैसे तो सर्वत्रकृति की भाषा सरल, आसानी से समझ आ जाने वाली व्यावहारिक भाषा है, जो अपेक्षित भी थी। परन्तु कहीं-कहीं कुछ शब्द हिमाचल निवासियों को छोड़कर दूसरे भाषा-भाषियों के लिये सुबोध नहीं है। जैसे "दस जख्मों को 'राजी" करता है।' में "राजी" शब्द 'रोग मुक्त' होने के अर्थ में आया है, पर ठेठ पहाड़ी शब्द है। ऐसे ही और शब्द है। पर ऐसे शब्दों की संख्या बहुत अधिक नहीं है।

हिन्दी की विकासात्मक प्रवृत्त को ध्यान में रखते हुए ऐसे शब्दों का स्वागत किया जाना ही चाहिए परन्तु यह अच्छा होगा यदि ऐसे शब्दों के अर्थ फुटनोट में या परिशिष्ट भाग में स्पष्ट कर दिए जाएं।

जो भी हो हिमाचल प्रदेश की वनौषधि-सम्पदा पुस्तक बड़े काम की वस्तु है। इस क्षेत्र में पहले तथा ठोस काम करने के कारण बधाई के पात्र हैं। 284 पृष्ठों की बढ़िया छपी इस पुस्तक का मूल्य सामग्री तथा किये परिश्रम की दृष्टि से 20 रुपये ठीक ही लगता है। पुस्तक सुभाष ब्रदर्ज डिपु बाजार, धर्मशाला से उपलब्ध हिमाचल-साहित्यकार परिषद्, धर्मशाला द्वारा विमोचित प्रथम पुष्प है।

[डा० वेद प्रकाश अग्नि,
अध्यक्ष हिन्दी विभाग राजकीय
महाविद्यालय, धर्मशाला।]

हिमाचल रचनाकार संगम की जुब्बल में साहित्यक गोष्ठी

—सी० आर० बी० ललित।

माडल हा० स० स्कूल में विज्ञान भवन उस दिन खचाखच भरा था। महासुई के विद्वानोंकी गोष्ठी में परिचर्चा सुनने हेतु जिसका प्रतिपादन किया, हिमाचल रचनाकार संगम के प्रधान प्रो० हरि राम जसटा ने और अध्यक्षता की हिमाचल कला, संस्कृति भाषा अकादमी के सचिव श्रीयुत हरिश्चन्द्र पराशर ने। अन्य भाग लेने वाले विद्वान थे–हिमाचल प्रदेश सचिवालय के पुस्तकालय अध्यक्ष मिया गोवर्धन सिह एवं हिमाचल सौंदर्य (मासिक) तथा हिम प्रताप (पाक्षिक) के सम्पादक श्री खुशी राम शर्मा।

श्री पराशर ने उद्‌घाटन भाषण में जहां महासू के लोक जीवन पर प्रकाश डाला वहां यहां के लोकनृत्यों की मुक्तकंठा से सराहना भी की। भारत के प्रतिनिधि नृत्य कत्थक नृत्य के पीछे छुपे लम्बे इतिहास पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने इस बात पर बल दिया कि लोक नृत्य समाज की मूलभूत और युगयुगान्तर से चली आ रही परिपाटी के बिम्ब होते हैं। संभवत: 14 अक्तूबर के दिन के सांस्कृतिक कार्यक्रम उनके नयनों में तैर रहे होंगे उस समय।

श्री पराशर मानते हैं कि महासुई श्यामला उपभाषा का क्षेत्र शिमला और सोलन तक सीमित नहीं माना जाना चाहिए अपितु सिरमौर और आधा कुल्लू (सिराज क्षेत्र) भी इसी की झोली में पड़ता है—मैं समझता हूं कि पूरा कुल्लू और आधा मंडी (सिराज सुकेत आदि) कुछ हद तक बिलासपुर का ऊपरी क्षेत्र भी इसी के साथ जुड़ा हुआ मानना चाहिये।

श्री पराशर का सुझाव कि इस पूरे क्षेत्र के लेखकों को चाहे वे कुल्लू में हों चाहे सोलन में मंडी में हों या नाहन में या दिल्ली में ही क्यों न हों, आपस में सम्पर्क कायम रखते हुए इसके उत्थान के लिए समन्वित प्रयास करना चाहिए ताकि हिमाचल की मूल संस्कृति को क्षरण से बचाया जा सके। पहाड़ी अंग्रेजी जो भी रचना महासुई के लेखक की छपें या महासुई संस्कृति, भाषा एवं कला सम्बन्धी छपें, वह श्री हरिराम जसटा प्रधान रचनाकार संगम, कुमार विल्डिंग शिमला–6 को भेजी जा सकती हैं।

प्रो० हरिराम जसटा को जिन्होंनें विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया अंग्रेज अधिकारियों और पर्यटकों के यात्रा विवरणों की ओर जिन्होंनें अपनी यात्रा दैनंदिनी में यहां की कला, संस्कृति एवं भाषा के विभिन्न पहलुओं पर आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व प्रकाश डाल कर आज के प्रबुद्ध पाठकों एवं शोध कर्ताओं के लिए उनका उस समय का स्वरूप सुरक्षित किया, किंतु उनका विचार था कि आज के विद्वान को उनके विवरणों से तथ्यों की उपलब्धि गहन अध्ययन एवं अनावश्यक, अप्रासंगिक अंशों की काट करके ही हो सकती है जिसके लिए उनके पूर्वाग्रहों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना अनिवार्य हो जाता है। अंग्रेजों ने जहां राजनैतिक अलगाव लाने का भरसक प्रयास किया वहां भाषा, कला एवं संस्कृति के संरक्षण में परोक्ष रूप में योगदान भी दिया जो वंदनीय है।

Scanned with CamScanner

प्रो0 जसटा ने सांस्कृतिक क्षेत्र में कांगड़ा क्षेत्र के विद्वानों द्वारा लाये गये नव जागरण की भूरी भूरी प्रशंसा की और वहां के लेखक वर्ग को बधाई का पात्र माना जबकि महासू सिरमौर कुल्लू क्षेत्र में उन्हें भूतपूर्व रामपुर बुशहर रियासत के मंत्री श्री विकार जोही की पहाड़ी अंग्रेजी शब्दावली (लगभग 1,000 शब्द) ही स्वाधीनता से पूर्व हुआ भाषा की दिशा में एकमात्र प्रयास लगा। हजारों वर्षों पुराना मनेवटी (चौपाल) का ताम्रपत्र पर लिखित ग्रंथ भटेवड़ी (चौपाल) से 15 पुश्तों से प्रकाशित होने वाली हस्तलिखित जंत्री एवं 15 पुश्त पुराना ही मलू पंड़ित का साचां (यजुर्वेद का पहाड़ी नामकरण) इस दिशा में प्रशंसनीय प्रयास है। प्रो0 जसटा ने अपने धारा प्रवाह भाषण में पुराने लोकगीतों झुरियों बारों आदि के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि इनमें अभी भी वे शब्द रत्न सुरक्षित हैं जो अब आम बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त नहीं होते अतः इनका संग्रह सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझ कर शीघ्रातिशीघ्र किया जाना चाहिए इससे पूर्व कि इन्हें जानने वाली पीढ़ी हमारे मध्य से उठ जाए।

इस क्षेत्र मे सोमसी के माध्यम से एवं अन्य प्रोजैक्टों के अन्तर्गत हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी एवं भाषा विभाग द्वारा किए जा रहे प्रयत्नों की उन्होंने सराहना करते हुए हिमाचल के सांस्कृतिक उत्थान का श्रेय डा0 यशवन्त सिह परमार, श्री लाल चन्द प्रार्थी एवं ठा0 राम लाल को दिया। इनके अतिरिक्त जिन लेखकों के नाम उन्होंने गिने वे हैं सर्व श्री काहन सिह जमाल, श्री वी0 डी0 काले मियां गोवर्धन सिंह, प्रो0 केशव शर्मा, नरेन्द्र अरूण, लछी राम सलीम, खुशी राम शर्मा, किशोरी लाल शर्मा, सी0 आर0 बी0 ललित, हरि सिंह ठाकुर हरदयाल सिह इत्यादि।

अब बारी थी मियां गोवर्धन सिंह की जिन्होंने हिमाचल के इतिहास के बारे में काफी शोध कार्य किया है और जब भी कभी किसी शोधार्थी को इस विषय में कोई कठिनाई प्रतीत हुई है तो मियां जी ने उसका मार्गदर्शन किया है चाहे वह देश का प्रधान मन्त्री हो चाहे नौसीखिया छात्र जब भी किसी हिमाचल के विगत के प्रसंग से किसी संदर्भ की आवश्यकता पड़ी है उसने मियां जी का ही द्वार खटखटाना श्रेयस्कर समझा है।

प्रागैतिहासिक युग की गहराइयों में डुबकी लगाते हुए मियां जी कह रहे थे कि जब आर्यों का प्रवाह सप्तसिंधु की ओर बढ़ा तो उन्होंने सिंधु घाटी सभ्यता के लोगों को पहाड़ों की ओर धकेला। क्योंकि आर्य स्वंय भी शीत प्रदेश के निवासी थे। अतः हिमाचल की कंदराओं ने उन्हें भी आकर्षित किया और वैदिक युग में आर्यों की एक शाखा कश्मीर हो कर हिमाचल, कुमाऊं के रास्ते नेपाल तक पहुंची। मियां जी के अनुसार खशधार, खरशाली आदि गांव उसी समय की यादगार है। महाभारत काल में तो इन पहाड़ों का इतिहास बाणासुर सुबाहू एवं अन्य आर्य अनार्य राजाओं जिन में कुलिंद अथवा कुनिन्द भी सम्मिलित हैं, के वर्णन से अधिक मुखर हो उठता है। एक दंत कथा के अनुसार पांड़वों ने अपना अज्ञातवास राजा विराट की ग्रीष्म कालीन राजधानी हाटकोटी में बिताया था। पाणिनी ने यमुना और शतद्रु (सतलुज) के मध्य स्थित क्षेत्र को कुनिन्द देश की संज्ञा दी है जिनकी मुद्रायें भी इस क्षेत्र में प्राप्त हुई हैं। कुनिन्दों का एक महाराजा एवं राजाओं की सभा होती थी ईस्वी की तीसरी एवं चौथी शताब्दी में यह राजाओं की सभा शायद छोटे छोटे पहाड़ी राजाओं की सभा रही होगी। बोत्र कुनिन्द वंश के महाराजा के मातहत रहें होगें।

कुनिन्दों के पश्चात् गुप्तों के प्रभाव में आया यह क्षेत्र और फिर हूणो के अधिकार में। हर्षवर्धन का राज्य विस्तार भी सुदूर हिमालय तक था जिसका प्रमाण खण्ड (कुल्लू) स्थित ताम्रपत्र से मिलता है। उस समय स्पिति का राजा समुद्र सैन था जो हर्षवर्धन का सामान्त रहा। यों भी हर्ष के सिक्के कई लोगों के पास रहे हैं। महासू क्षेत्र में किसी भार्या को प्रसव पीड़ा यदि तीव्र हो तो हर्ष का चांदी का सिक्का पानी में डालकर वह पानी

उसे पिलाया जाता है ताकि उसे प्रसव का कष्ट अधिक न हो—शायद पुरानी चांदी कोरामीन का काम करती है मुसलमान लोग हिजरत के समय ढाले गये चांदी के सिक्कों से यह काम लेते हैं। 647 में हर्ष की मृत्यु के पश्चात कन्नोज पर प्रभाव जमाने के लिए चूंकि वह उत्तरी भारत का केन्द्र बन चुका था, पालों सेनों राठोरों एवं प्रतिहारों में होड़ लगी और उनमें से कुछ हिमालय की तराई तक पहुंचे कुछ कन्नौज में असफलता के कारण कुछ धार्मिक अथवा पर्यटन सम्बन्धी कारणों से और अपने लिए छोटी छोटी ठकुराईयां गढ़ डाली। राष्ट्रकूटों ने अपना राज्यपाल आठवीं शताब्दी मे सिरमौर में प्रतिष्ठित किया जिसने अपने राज्य की सीमा नोगली तक विस्तृत की। राष्ट्रकूटों को हटाया पालों ने और पाल शिकार हुए प्रतिहारों के साम्राज्यवाद के। कुछ हारे कुछ जीते किंतु छोटे छोटे क्षेत्रों पर उनका प्रभाव बना रहा और कालांतर में बुशहर के अलावा 12 ठकुराइयां निचली महासुई पहाड़ियों में बनी और 18 ऊपरी भाग में मुगल काल में यह समूचा देश 26 ठकुराइयों के नाम से पुकारा जाता था जिनके छोटे ठाकुर पिंजौर में मुगल बादशाहों को अदा करते थे। अठारवीं शताब्दी में जब बिलासपुर और कांगड़ा के राजाओं की आपस में ठन गई तो बिलासपुर के राजा ने सहायतार्थ गोरखों को बुलाया जिन्होंनें इन 26 ठकुराइयों पर भी अपना प्रभुत्व जमाया और लूटमार की जिसके फलस्वरूप ये राजागण अंग्रेज अधिकारी आक्टरलूनी से शिष्टमंडल के रूप में लुधियाना में मिले जिसने अपनी दो बटालियनें—एक बिलासपुर होकर नालागढ़ तक तथा दूसरी सिरमौर चूड़ी चांदनी होकर जुब्बल की ओर भेजी। दूसरी बटालियन रणशर छापा और उसके 100 सैनिकों को रावी गढ़ किले में हरा कर रामपुर पहुंची 1815 में अंग्रेजों ने पहाड़ी राजाओं के साथ संधि पर हस्ताक्षर किए और सपाटू में राजनैतिक एजेंट का कार्यालय खोला और बाद में शिमला राजधानी बनी 1818 में 26 ठकुराइयां शिमला हिल्स स्टेट कहलाई और इनके लिए अलग राजनैतिक एजेंट नियुक्त किया गया आगे का इतिहास सभी जानते हैं।

इसके बाद प्रकट किए गए विचारों पर उपस्थित लेखकों ने अपने विचार प्रकट कर लेखक गोष्ठी क लिए भाषा अकादमी का धन्यवाद किया।

इस गोष्ठी में एक कमी जो अखर रही थी, वह कमी कवि सम्मेलन और सांस्कृतिक कार्यक्रम म भी अखरी वह थी पहाड़ी, संस्कृति और कला के प्राण, कृषि मन्त्री श्रीयुत लालचन्द प्रार्थी की। काश वह जुब्बल आ पाते ऐसे मौसम में और देख पाते अपनी आंखों से कि महासु के लेखक और कवि भी अपने क्षेत्र की भाषा कला एवं संस्कृति को उतना ही महत्व देते हैं, जितना हिमाचल प्रदेश के अन्य क्षेत्र।

महासुई के लखक और कवि भी भाषा, कला, एवं संस्कृति अकादमी तथा राष्ट्र की अन्य संस्थाओं क साथ साथ देश को आगे ले जाने के लिए सजग हैं और देश की एकता समानता और समाजवाद लाने के लिए वह विनम्र रूप से प्रयत्नशील है।

गोष्ठी लगभग 8 बजे समाप्त हो गई। इस के बाद कवि सम्मेलन प्रारम्भ हुआ।

तुलनात्मक वाक्य अध्ययन

हिन्दी-महासूई–कुल्लूई

भाषा का मूल वाक्य है, शब्द नहीं । 'वाक्य' के दो अर्थ हैं, (1) कुछ शब्दों का सार्थक समूह, (2) वाक् के योग्य अर्थात् अभिप्रेत आशय । पहला अर्थ-व्यवहारिक है, दार्शनिक नहीं । कारण यह कि शब्दों के जोड़ से वाक्य नहीं बनता, वाक्य के विश्लेषण से शब्द बनते हैं । मानव ने जब बोलना आरम्भ किया तो उस की एक ध्वनि में ही वाक्य था, अर्थात् एक ध्वनि ही उस के पूरे आशय को अभिव्यक्त करती थी। अतः वाक्य अनादि है, शब्द उपायकृत है । परन्तु यहां "शब्द" से हमारा अभिप्राय व्याकरणिक शब्द से है, ध्वनि वाचक अनादि नाद से नहीं है यदि नाद को शब्द मानना हो, तो नाद अनादि होगा, परन्तु फिर उस 'नाद' में ही वाक्य (अभिप्रेत आशय) का संधान करना पड़ेगा। जन साधारण बात करता है अर्थात् वाक्य बोलता है, यह उपायकृत शब्दों का उच्चारण मात्र नहीं करता । जब हम यह कहते हैं कि भाषा मानवता का दुसरी (डुप्लीकेट) संसार है, तो हमारा अभिप्राय यही होता है कि मानव के भीतरी भावों अर्थात् अभिप्रायों का उच्चरित रूप वाक्य है, वाक्य ही भाषा है । इस तरह भाव, वाक्य और भाषा तीनों एक ही महादेव का एक त्रिशूल है।

हिन्दी भारत राष्ट्र की राजभाषा और राष्ट्र भाषा है । कहते हैं कि किसी भी राष्ट्र भाषा अथवा राज भाषा का बन जाना आसान होता है परन्तु उसका घर की भाषा बनना अत्यन्त कठिन और प्रायः असम्भव भी रहता है । घर की भाषा कई अन्य तत्वों पर आधारित होती है जिन्हें कोई आदेश नहीं बदल सकता । एक दार्शनिक ने कहा है आप उपभाषा को मार सकते हैं, परन्तु बदल नहीं सकते । उपभाषाओं का अस्तित्व वैसे ही अनन्त है जैसे मानव समूहों का ।

हिमाचल प्रदेश में पहाड़ी भाषा के कुछ उपभाषाई रूप हैं और कुछ केवल भाषान्तर मात्र है। हम हिन्दी और पहाड़ी के तुलनात्मक अध्ययन के लिये कुछ हिन्दी वाक्यों का शिमला पहाड़ी और कुल्लू-पहाड़ी में रूपान्तर दे रही है । शिमला पहाड़ी का प्रस्तुत रूप शिमला के आसपास से है ।

	हिन्दी	कुल्लूई	महासूई (शिमला पहाड़ी)
1.	तुम बाजार हो आओ ।	तुस्से सेहरा जाई एजात ।	तुस्से बाजार के जाई आओ ।
2.	वह पूरी किताब पढ़ गया ।	तेईए पूरी कताब पौढ़ी ।	से सारी कताब पढ़ी गोआ ।
3.	उसे तंग न करो नहीं तो रूठ बैठगी ।	तैसा बै तंग मत केरदे नईं ता रूशी बेशली ।	तेसा तंग न करो नईं ता रोशी जाणे ।
4.	मैं यह क्या कर बैठा ।	ओ मैं की केरू ।	ए मॉए का करू ।
5.	मुझ से जो बन पड़ा, मैंने अच्छा किया ।	मूंन जे होई सकू, सो मैं शोभला केरू ।	मांदो जो होई सका, से मोए अच्छा ही किया ।
6.	उसने छोटा पेड़ काट डाला ।	तेईए होछा बुट्टा काटी डाऊ ।	तिनए होछा डाल काटी पाया ।
7.	तुमने यह क्या लिख मारा।	तुस्से ए की लिखू ।	तुस्से ए का लिखा ।
8.	मैंन पत्र लिख रखा है ।	मैं चिट्ठी लिखी डाईदी ।	मोए चिट्ठी लिखी राखी असो ।
9.	वह आपसे खेलना चाहता है ।	सो तुस्सा संघे खेलिणा चाहा सा ।	से तुस्सा साथी खेलणा चाहो ।
10.	हम बरसों से यहीं रहते आए हैं ।	आसे बोरशां न ओरू ओखे रोंहदे आएदे ।	हामे बोरषो दा ऐथी रोंहदे आए असो ।
11.	ध्यान से पढ़ा करो ।	ध्याना संघे पोढ़े केरात ।	ध्यानो साथी पढ़िया करो ।
12.	देख कर चला करो।	हेरीया हांडे केरात ।	देखी रो हांडया कर ।
13.	मैं आपका काम अभी किए देता हूं ।	हांऊ तुसरा कौम अब्बे केरी देआ सा ।	आऊं त्हारा काम ओबू करी देऊ ।
14.	उसे एक पुरानी बात याद आई ।	तेस्सा बै एक पराणी गल्ल याद आई ।	तेसो एक पराणी बात याद आई ।
15.	पढ़ना आरम्भ करो गुस्सा क्षमा करो ।	पोढ़ना शुरु केरा झिक छोडा ।	पढ़ना शुरु कर रोष छाडो ।
16.	उसे भिखारी पर दया आई ।	तेई बे भिच्छा मांगणू आले पन्थे-दया आई ।	तेसो भिखारी पांदे दया आई
17.	अंधेरे में कुछ दिखाई नहीं पड़ता ।	निहारे न किछ नीं हेरीदा	निहारे बिचे कुछ नीं दिशदा ।
18.	शोर में कुछ सुनाई नहीं पड़ता ।	रौले न किछ नीं शुणीदा	रौले बिचे कुछ नी शुणदा
19.	आपकी बातें याद रहेंगी ।	तुसरी गल्ला याद रोहली	तुसोरी बातो याद रौणी ।
20.	सम्भव है कि वह वहां आया हो ।	शायद सो तोखे आऊदा होए ।	शायद से तेती आया ओ ।
21.	हो सकता है कि कहीं वर्षा हुई हो ।	होई सका सा जे कोंइच गाश हुआ दा होए ।	होई सको कि केथी बरखा ओई ओ ।
22.	दवा खाओ जिससे तुम अच्छे हो जाओ ।	दवाई खात तबै तुस्से रांबड़े होई जाणा ।	दवा खाओ जनिए तुस्से ठीक होई जाओ ।
23.	नौकर से कहो चाय लाए ।	नौकरा बै बोलात चाह आणे	नौकर के बोलो, चाय लेओ
24.	ईश्वर आपको सदा सुखी और प्रसन्न रखे ।	परमेशर तुसा बै सदा सुखी होर खुश रखे ।	भगवान तुस्सो सदा सुखी और खुश राखो ।
25.	आप चलिए मैं अभी आया ।	तुस्से चोला हांऊं अभै आऊ ।	तुस्से चालो आऊं ऐबू आया ।
26.	मेरी एक बहन है ।	मेरी एक बहण सा ।	मेरी एक बहण असो ।
27.	तुम्हें क्या पड़ी है।	तोभे की पोईदी	तुस्सो का पोड़ी रोई
28.	तुम जाओगे भी या बैठे ही रहोगे।	तो जाणा भी कि बेशीया रोहणा ।	तुस्से डेवणे भी कि बैठे ही रोणें।
29.	जाने भी दो, रहने भी दो, इतना झूठ क्यों ।	जाणे देआ, रोहणे देआ, एतरा भी की झूठ ?	जाणे देओ, रौणे देओ इतना झूठ कौए।
30.	तुम दिन भर कहां रहे ।	तुस्से सारा ध्याड़ा को रोहे?	तुस्से सारे देड़े केईं रोवें ?
31.	नदी का पानी कुछ कुछ घट गया है ।	नोई रा पाणी किछ किछ घटी गोऊदा सा ।	नदी रा पाणी कुछ कुछ घटी गोआ ।
32.	मुझ से क्या अपराध हुआ?	मूंन की कसूर हुआ ?	मांदो का कसूर ओआ ?
33.	या तुम जाओ या मैं ।	या तुस्से जात या हांऊं जानू	या तुस्से डेवो या आंऊं
34.	क्या आप मेरा एक काम कर देंगे ।	की तुस्से मेरा एक कोम केरी देले	का तुस्से मेरा एक काम करी देले।
35.	मुझे अपना काम अच्छा लगता है ।	मुम्में आपणा कोम शोभला लागा सा ।	मां आपणा काम अच्छा लागो ।
36.	उसे चाहिए कि सभी से सभी प्रकार की बातें न करे ।	तेईबे चाहिए जे सो सिभी संघे हर तरह री गल्ला न करे।	तेसो चेंई कि सबी साथो सबी प्रकारो री बात न करो।

—मीना—विद्या

शब्दश्री

प्राचीन प्राच्य भाषा शास्त्रियों ने शब्द की अपेक्षा शब्द के प्रयोग को अधिक महत्व दिया हैं। उन में से कुछ ने प्रयोग को 'प्रभा' कहा हैं। हिमाचल की पहाड़ी भाषा अधिकांशतः कथ्य भाषा है, अतः प्रभा का महत्त्व इसमें और भी अधिक हैं। अतः पहाड़ी प्रभा के अन्तर्गत कुछ उदाहरण देते रहेगें।

क्रमांक	शब्द	अर्थ	वाक्य	वाक्य हिन्दी
1.	आङ्ग	1. शरीर का भाग	पता नहीं कैंई मेरा आङ्ग आङ्ग औकड़ा औ।	पता नहीं क्यों मेरा अंग अंग अकड़ गया है।
		2. अस्तु, भस्मी	आंङ्गों गिन्हे हरद्वारो कि कुण डेवुआ?	भस्मी लेकर हरिद्वार कौन गया?
2.	औड़ा	1. आवश्यकता	आ कैंई औड़ा तेसदा?	मुझे क्या आवश्यकता हैं उसकी?
		2. कमी, गरीबी	तेस घटि औड़ा बेगी।	उसकी कमी बहुत खटकी।
3.	ओपरा	1. अजनबी	आं ओपरैंह मांछो दा सरमू।	मैं अजनबी व्यक्ति से शरमाता हूं।
		2. अजीव	सै ओपरा मांछ असौ।	वह अजीव आदमी है।
4.	उतरना	मनुष्य द्वारा सिर हिलाकर देवी देवता की ओर से बोलना।	तेस दो का उतरी।	उसे कौन सा देवता आता है।
5.	छूबों	1. देवी देवता की 2. कसम खा कर किसी परिवार की खाने पीने की वस्तु को न छूना और घर में प्रवेश न करना (जो इस कसम को तोड़े, उस पर देवी-देवता का रोष होता है)।	घट्टू रै पट्टू दो 1. छुवों लाओ दी।	घट्टू ने पट्टू का वहिष्कार कर रखा है।
		2. छूना (जातपात से सम्बन्धित)	2. सै रोटी जै छूवों ला, तौ खाए न।	वह रोटी अगर छुएगा तो खाना मत।
6.	फेटी	जल्दी, शीघ्र	फेटी-फेटी दौउड़ तबै पूजै ला	जल्दी जल्दी दौड़ तभी पहुंचेगा।
7.	बीया	कुलीन, श्रेष्ठ	शादी चैंही बीयै रै आगौ कौरनि।	शादी कुलीन परिवार म करनी चाहिए।
8.	दयुठी	(लघुदीप)	दयुठी बाल	दीपिका जलाओ।
9.	गिल्लड़	गले के नीचे का उभरा हुआ मांस का गोला।	आंएं दे पाणिये चई कोई नुकस-ऐ कि एत्थू देया लोका जो गिल्लड़ मते होंदे।	गांव के पानी में ही कोई कमी है कि यहां के लोगों को गिल्लड़ बहुत होते है।
10.	खिट्ट	दौड़कर, भागकर	राजू! जा खिट्ट मारी नैं चाचे चो सदीलआ।	राजू दौड़ कर चाचा जी को बुला ला।
11.	बाचणा	किसी धार्मिक ग्रन्थ का पाठ	म्हारा पंडत बड़ी खरी कथा बाचदा-ऐ।	हमारा पण्डित धार्मिक ग्रन्थ का पाठ बहुत अच्छा करता है।
12.	छाल	छलांग	गुड्डू कोई दस्सां फुट्टां दी छाल मारी लैंदा-ऐ।	गुड्डू दस फुट की छलांग लगा लेता है।
13.	पंद	खजूर की लम्बी चटाई	तेरी पंद नसो घसो जाणी पल-भर बोहणां था।	तेरी चटाई घिस थोड़ी जानी थी, हमने पल भर ही बैठना था।
14	बिन्नां	1. आसन	1. भूंइयां कहजो बैंट्ठा-न्दे बिन्ना लई लया।	1. भूमि पर क्यों बैंठते हो आसन ले लीजिये।
		2. घड़ा अथवा बोझ उठाने के लिये सिर पर रखा कपड़े का बनाया गया आसन।	2. ओ कुड़ियो चिड़ियो, रक्खा सिरे पर बिन्ने कनैं चला पाणियैं।	2. ऐ लड़कियो, सिर पर बिन्ने रखो और पानी लाने चलो।
15.	हौल्यां	धीरे	बड़ा नेहरा, हौल्या हौल्या चला।	बड़ा अन्धकार है धीरे धीरे चलो।

क्रमांक	शब्द	अर्थ	वाक्य	वाक्य हिन्दी
16.	नपोहगल	ढीला ढाला	रामू बडा नपोहगल माहणु आं।	राम बड़ा ढीला (सुस्त) आदमी है।
17.	न्योड़ा	सब्जी	क्या न्योड़ा बणाईरा तैं।	तुमने क्या सब्जी बनाई है।
18.	न्वाड़ना	शुरु करना	मकाना रा कम्म कदूं न्वाड़ना ?	मकान का काम कब शुरू करना है ?
19.	छन्न	मकान	ए किसदी छन्न है।	वह किसका मकान है।
20.	भाडखोर	रिश्वतखोर	सैः भाडखोर हा।	वह रिश्वतखोर है।
21.	मांजण	राख	भाण्डे माजणी ने मांज।	भाण्डे राख से साफ करो।
22.	औखा	अधिक रोगी	स्याणा औखा आ।	बूढा मरणासन्न है।
23.	मंडासा	पुरुषों द्वारा सिर पर बान्धने की पगड़ी।	रामो रे मूंडो दा मंडासा थिया।	राम के सिर पर पगड़ी थी।
24.	कक्कड़याली	वह भूमि जिसमें मक्की बीजी जाती है।	एबे कक्कड़याली बड़ी काठी होई गई री।	इस बार मक्की बीजी हुई भूमि कठोर हो गई है।
25.	अद्धो-सुध	आधे से भी अधिक	दुद्धे-च अद्धो-सुध पाणी ऐं मिलया।	दूध में आधे से भी ज्यादा पानी मिला है।
26.	कुज्जू	मिट्टी का छोटा लोटा	देहीं कुज्जुए च बि खरा जमदा।	दही मिट्टी के छोटे लोटे में अच्छा जमता है।
27.	चिहड़ू मिहड़ू	आग जलाने के लिये छोटी छोटी सूखी टहनियां।	चिहड़ू मिहड़ू कठेरा कनैं अग बाला।	छोटी छोटी सूखी टहनियां इकट्ठी करो और आग जलाओ।
28.	लकोला	रोशनदान	छोटे-छोटे बच्चे लकोलया-चा झाक्की-झाक्की खेला दे।	छोटे छोटे शिशु रोशनदानों में से झांक झांक कर खेल रहे हैं।
29.	ग्याली पचियाली	मकान का आगा-पीछा	सैंह मड़ा ग्यालियां पचिया-लिया ई झाकदा रेहा, सर्मा मारे अन्दर नीं आया।	वह बेचारा मकान के आगे पीछे ही झांकता रहा, झिझक के मारे अन्दर नहीं आया।
30.	बौहड़	मकान की दूसरी मंजिल	ओ छोरुओ! उतरा थल्लैं, बोहड़ी पर क्या दड़-दड़ लाइयो।	अरे चंचल बच्चो। 'बोहड़' पर क्या तरथल मचाया हुआ है, नीचे उतरो।
31.	पंगु	छोटा खेत	ए पंगु बी मिज्जो ई औणा।	यह छोटा खेत भी मुझे ही आयेगा।
32.	प्वाज्जा	उपज	इस बार खरा प्वाज्जा हूणा	इस बार अच्छी फसल होगी।
33.	बाजड़	पागल	तू बी निहरा बाजड़ ई आ	तू तो बिल्कुल पागल ही है।
34.	गत	खड्डा	राती चुहयां इक नौआं ई गत पाई रख्या।	रात को चूहों ने एक नया ही खड्डा कर दिया।
35.	गुहार	फसल बोने से पहले जमीन को हल चला कर खोदने की क्रिया।	अम्बर बरिस्या नी कनैं गुहार सुकी गई।	बारिश न होने से खोदी हुई जमीन सूख गई।
36.	बिक्कर	संदेश	तिसजो परदेश गेह्यां बरहीयां होई गईया अपर तिसदा कोई बिक्कर नहीं आया।	उसे गए सालों बीत गये परन्तु उसका कोई संदेश न मिला।
37.	खरीहण	बहुत से बच्चों की भीड़	स्कले छुट्टी क्या होई कि मुण्डुआं दी दुकाना पर खरीहण लगी गई।	स्कूल में छुट्टी क्या हुई कि लड़कों की दुकान पर भीड़ लग गई।

—आशा गोयल

STUDIES IN THE SYSTEMATICS OF HIMACHALI LINGUISTICS

—Dr. Siddheswar Varma.

I. Introductory:

In the Sept. 1976 issue of the Journal Him-Bharati Pp.12-19 there occurs a very valuable article entitled:—

पहाड़ी (महासुवी) की शब्द-सम्पत्ति

The Value of the article lies in the preciously new linguistic data for the investigation of linguistic technicians.

II. A Challenging Contrast of long : Short Vowels

On page 12, last para, we have the following contrast of long and short vowels: the former being technically—

"Compensatory lengthening"

Long : आम्ब, ह्राथ, गूठा, आग

Short : भस्मा, कंपे, अंगूरी, शक्कर, अण्डा

To the non-technician, the very question of long or short vowels here may sound ridiculous but to the linguistician it means a worry which may involve sleepless nights.

III- A reflection on the long Vowels:

Now, if we consult Turner : "A Comparative Dictionary of Indo-Aryan languages" regarding some of the above-mentioned words, we shall get the following particulars—

(1) Turner No. 1268, amra—"Mango" Mahabharata, Sindhi—ambu, Kashmiri—Panjabi amb, Hindi-am
(2) Turner No.14024, 'Hast' hand—Rigveda, Sindhi-hathu, Kasmiri—Atha, North-West Pahari, Bhadarwahi—hatth, Hindi—hath
(3) Turner No. 137, angustha-Āsvalayana Srauta sutra, Bhadarwahi nyuth, Kashmiri nyoth, Kumauni—nuth
(4) Turner No. 55, agni—fire Rigveda, Western Pahari-all dialects "āgg."
(5) Turner No. 9425, Bhasman-ashes Atharvaved, Kashmiri-bhas, Nepali-bhas-bhas.
(6) Turner No.—1111, anda—egg, Rigveda, the history of the length of the Vowel in this word is most baffling. Even in Pali the form was replaced by anda—but Dardic-

Tirahi has ana, Dardic—Pasachi—anda, Sindhi-ano, lahnda-andra, even Himachali Chameali-anda, Kumauni adu.

7. Turner No.—12338, Sarkara-Candied Sugar, Harivansa, Kashmiri-Sekar, Uria-Sakara, Gujarati—Sakar.

IV. Conclusion:

The above bewildering data have led the old fashioned experts in linguistics to state that such confused occurrences of linguistic quantity are incidents of "dialectical mixture"; but up to date experts ridicule such an opinion as being merely evasive. How is it that in Mahasui ām has always long (a), but/bhas/always short/a/? There must have been, in the history of हिमाचली determinate conditional factors which have definitely established these quantitative phenomena on a distributional besis. The technician, therefore, looks forward to 'an era' of exploring tendency in the field of Himachali linguistics in order to trace the processive Stages through which these quantities were firmly established.

2

I. Introductory:

It is interesting to notice that a reciprocal exchange of views on Himachali have appeared in two issues of the Journal on the importance of uniformity in spelling of हिमाचली. The first of these articles is from the masterly pen of Shri M. R. Thakur entitled—

पहाड़ी भाषाओं में शब्द वर्तनी की समस्या और समाधान

The second article is entitled: वर्तनी विचार-विनिमय: While both the writers emphasize the importance of uniformity, in spelling, the second article on page 9, paras 2nd and 3rd indicates an admirable wideness of horizon by admitting the invitable phenomenon of inconsistency in spelling even among renowned authors like Tulsi. But on page 10, para 2, this article is even more enthusiastic for the accurate presentation of phonetic spelling.

II. Vagaries of spelling in European Languages:

The Vagaries of spelling in European Languages described on page 10 under No. 104 have little bearing on हिमाचली; for these vagaries have virtually acquired a defacto, established uniformity, by historical acquiesence.

हिमाचली on the other hand, is in the processive stage. It is in the making and it is a happy sign of the times that concerted thought has begun to separate for the implementation of uniformity.

III. Items of pronunciation needing unformity in spelling:

(1) On a short (एं) there seems to be a misprint/ए/on page 11, line 9; in fact the correct spelling crops up in line 18 after "शब्द भीं"

(2) Parallel to/ए/the spelling for ओ/similarly could be adoped, as suggested on page 12, para 1.

(3) In para 3 of this page, under 2.—3; the difficulty of printing seems to be an exaggeration. The velocity of the progress of the country is a protest against this fear.

(4) The long/ई/and ऊ in plural formations could be adoped by a quick statistical survey of frequency (mentioned on page 13, para 2).

(5) Re. a Semi Vowel between vowels discussed on page 14 under 2.8, this may be permitted as being optional because even the topmost authors write sometimes लिये/and/somtimes/लिऐ/

(6) There should be a similar option in the treatment of/ल/and/L/:

(7) A very important feature of distinction between palatal and alveolar च has been pointed out on P. 15, para 2 and it must be adopted.

(8) ल: ल: ड: ड़:। variants in a small area of villages (page 6 under 3.3) should be taken as a sub regional peculiarity, and consiquently taken as optional. Such local disparity can never affect the uniformity of हिमाचली as a whole.

(9) The 'disjunctive' pronunciation of words the ढोल or खेल could be overlooked as a local feature under the same broad transcription/ढ/and broad/ख/followed by the whole phonetic world.

(10) On page 17, para 2, under 3.6 a very important feature viz. "glottal stop" has been mentioned, which cannot be neglected, but as regards its spelling/:/as suggested is diametrically opposit to this phenomena.

I recommend 1◌1 suggesting a closure.

VI. Conclusion:

The reciprocal exchange of view on a very fundamental issue, revealed in हिमाचली is a matter of congratulation, particularly so, as it has the enviable fortune of the acquisition of the enviably penetrating Shri M. R. Thakur.

अकादमी की गतिविधियां

राजगढ़ (सिरमौर) की नाट्य-कार्यशाला का संक्षिप्त विवरण

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी द्वारा पहाड़ी कलाकार संघ हाब्बन (सिरमौर) के सहयोग से एक नाट्य कार्यशाला का दिनांक 9-12-76 से 15-12-76 तक राजगढ़ में आयोजन किया गया ।

उद्घाटन:—इस कार्यशाला का उद्घाटन माननीय मुख्य मंत्री डा0 यशवन्त सिंह परमार ने किया । इस अवसर पर बोलते हुए उन्होंने प्रदेश की मूल्यवान सांस्कृतिक धरोहर की चर्चा की और कहा कि हमें अपने प्रदेश के लोकगीतों व लोकगाथाओं को यथावत सुरक्षित रखने के लिए कार्य करना चाहिए। गद्य और पद्य साहित्य रचना के सन्दर्भ में उन्होंने कहा कि गद्य के साथ ही साथ पद्य का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है अतः दोनों पक्षों का विकास भाषा के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण सोपान है। उन्होंने लोक नाट्यों के विकास पर अधिक ध्यान देने का सुझाव दिया और बताया कि इनके माध्यम से हिमाचल की पुरातन संस्कृति झलकती है । उन्होंने बाद में पहाड़ी कलाकार संघ के कलाकारों द्वारा प्रस्तुत किए गए सांस्कृतिक कार्यक्रम में सामूहिक नृत्य में भी भाग लिया ।

संघ के संस्थापक वैद्य श्री सूरत सिंह ने मुख्य अतिथि का स्वागत करते हुए संघ के मुख्य उद्देश्यों पर प्रकाश डाला और मुख्य मंत्री की भाषा तथा संस्कृति के क्षेत्रों में रुचि की सराहना की ।

हिमाचल-कला-संस्कृति भाषा अकादमी के सचिव श्री हरिचन्द पराशर ने कार्यशाला का विवरण देते हुए कहा कि प्रदेश की संस्कृति के कम प्रचारित अंशों तथा स्थानीय नाट्य परम्पराओं को उजागर करने के लिए इस प्रकार की नाट्य कार्यशालाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है । उन्होंने यह भी बताया कि इस प्रकार की कार्यशालाएं प्रदेश के अन्य स्थानों पर भी आयोजित की जाएंगी ताकि स्थानीय संस्थाओं का सहयोग प्राप्त किया जा सके और कलाकारों को अकादमी के साथ सम्बद्ध किया जा सके ।

इस अवसर पर पहाड़ी कलाकार संघ हाब्बन के कलाकारों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया जिसमें प्रदेश के लोक साहित्य की मनोरम झलकियां प्रस्तुत हुई । सिरमौर की नाटी में मुख्य मंत्री डा0 वाई0 एस0 परमार तथा उनकी धर्म पत्नी श्रीमती सत्यावती परमार, जो अकादमी की उपाध्यक्षा भी हैं, ने भी भाग लिया ।

दिनांक 10 जनवरी, 1977 को प्रातः के सैशन में श्री हरिचन्द पराशर ने 'लोक नाट्यों का शिल्पगत अध्ययन' विषय पर भाषण दिया । उन्होंने बताया कि लोक कलाकार को अपने सांस्कृतिक आयोजनों में इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि गांवों में बसने वाला साधारण जन अपने परिवेश से सम्बन्धित घटनाओं में ही अधिक रुचि लेता है । अतः कलाकारों को चाहिए कि वे अपनी कला को बोधगम्य बनाएं तथा अपनी

प्राचीन संस्कृति को सुरक्षित रखें। कार्यशाला को दो भागों में बांटा गया था। प्रथम भाग में अर्थात 10 बजे से 12 बजे तक विद्वानों के भाषणों का आयोजन होता था तथा अपरान्ह में 1 बजे से 6 बजे तक लोकनाट्यों के आयोजन सम्बन्धी चर्चा तथा स्थानीय लोकनाट्य 'पवाडा झांखो अजबा' की रिहर्सल होती थी। अपरान्ह में 10 जनवरी को 'पवाडा झांखों अजबा' का स्क्रिप्ट अकादमी के संस्कृति सहायक श्री योगेश गम्भीर ने कलाकारों को अभिनय हेतु लिखवाया। इसे श्री योगेश गम्भीर तथा श्री विद्या नन्द सरैक ने लिखा था।

दिनांक 11 जनवरी, 1977 को डा० बंशी राम शर्मा ने 'हिमाचल के लोक नाट्य' विषय पर एक वक्तृता दी जिसमें उन्होंने करयाला, रास, बांठड़ा, हिरण्यातर, हरण, होरिङ्फो, गुग्गा, ठोडा तथा भगत आदि लोकनाट्यों पर प्रकाश डालते हुए बताया कि इन नाट्यों में अभिनय सम्बन्धी भिन्नता एवं विविधता होते हुए भी इनके धरातल में हिमाचली लोकमानस की एकरूपता के दर्शन होते हैं। उन्होंने बताया कि लोक कलाकारों को अन्य क्षेत्रों की संस्कृति तथा लोक-परम्परा का ज्ञान होना भी अनिवार्य है। निर्धारित कार्यक्रम के स्थान पर दिनांक 12 जनवरी, 77 को वक्तृता का समय भी रिहर्सल के लिए प्रयुक्त किया गया क्योंकि उस दिन वक्ता राजगढ़ नहीं पहुंच पाए।

दिनांक 13 जनवरी, 77 को प्रो० कैलाश आहलूवालिया ने 'हिमाचल की लोककथाओं के नाट्यकरण की सम्भावनाएं' विषय पर अपने विचार व्यक्त किए। उन्होंने लोककथाओं के नाटकीकरण का भरसक समर्थन किया और कलाकारों को इस सम्बन्ध में उपयोगी सुझाव दिए।

दिनांक 14 जनवरी, '77 को श्री रामदयाल 'नीरज' सम्पादक 'हिमप्रस्थ' मासिक ने लोक-नाट्यों में संगीत तथा वाद्य यंत्रों का प्रयोग' विषय पर अपने विचार व्यक्त किए। उन्होंने लोक वादकों के मंच पर स्थान निर्धारण के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए बताया कि लोक नाट्य प्रदर्शन के समय उन्हें ऐसे स्थान पर आसीन किया जाना चाहिए जहां से वाद्य यंत्रों की ध्वनि इतनी अधिक न गूंजे कि कलाकारों का वार्तालाप ही न सुनाई दे।

दिनांक 15 जनवरी, '77 को समापन समारोह की अध्यक्षता कृषि मंत्री एवं अध्यक्ष अकादमी श्री लाल चन्द प्रार्थी ने की। इस अवसर पर पहाड़ी कलाकार संघ, हाब्बन के संस्थापक वैद्य श्री सूरत सिंह ने मुख्य अतिथि का स्वागत किया। उन्होंने हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी द्वारा भाषा, कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में किए जा रहे कार्यों की मुक्त कंठ से प्रशंसा की और प्रदेश की संस्कृति का जागरण व उत्थान करने के लिए प्रार्थी जी का हार्दिक आभार व्यक्त किया।

प्रार्थी जी ने अपने देश के सांस्कृतिक इतिहास की पृष्ठभूमि बताते हुए गन्धर्व देश (गांधार), ताशंकद (तक्षक कंद) तथा अन्य अनेक सुदूर स्थित स्थानों तक भारतीय संस्कृति की छाप के अनेक उदाहरण दिए तथा संस्कृति एवं कला-भाषा के क्षेत्र में हिमाचल प्रदेश में हो रहे कार्यों का विद्वतापूर्ण विवरण दिया। उन्होंने बताया कि अकादमी अन्य जनपदों में भी इस प्रकार की लोक नाट्य शालाओं का आयोजन करेगी और लोक कलाकारों तथा सांस्कृतिक संस्थाओं के साथ सम्पर्क स्थापित करेगी।

इस अवसर पर कार्यशाला के दौरान तैयार किए गए लोक नाट्य "पवाडा झांखो अजबा" का मोहक प्रदर्शन किया गया। इस लोक नाट्य की विशेषता यह रही कि यह सिरमौर की एक लोक गाथा "पवाडा झांखो अजबा" का नाट्यकरण था और इस में परदे के रूप में पात्रों का ही प्रयोग किया गया था। जो पात्र अपना अभिनय मंच पर प्रस्तुत करता था बाद में वह मंच के एक ओर खड़े हिलते हुए पात्रों की पंक्ति में सम्मिलित हो जाता था। नाट्य की कथा का सारांश इस प्रकार है:-

सिरमौर के दो गांवों कुफ्फर तथा डिब्बर के निवासियों के मध्य बड़ी देर से चरागाहों के सम्बन्ध में झगड़ा है। इस झगड़े में कुफ्फर गांव के 17 तथा डिब्बर गांव के 18 व्यक्ति अपनी जानों की आहुति दे चुके हैं। अजबा कुफ्फर गांव का वीर नायक है जिसकी पत्नी का नाम झांखो है। अजबा की मृत्यु डिब्बर गांव के साथ झगडे में हो जाती है। झांखो अपना बलिदान करके झगड़े को सदा के लिए समाप्त करने पर दृढ़ प्रतिज्ञ है, इत्यादि।

नाट्य में सिरमौर की समूची संस्कृति का दिग्दर्शन किया गया है। नाट्य का निर्देशन श्री योगेश गम्भीर ने किया।

कार्यशाला में 18 लोक कलाकारों ने भाग लिया। समापन समारोह में मुख्य अतिथि ने इन कलाकारों को प्रमाण पत्र वितरित किए। कलाकारों के नाम इस प्रकार है—

1. श्री विद्या नन्द सरैक	10. श्री हेत राम
2. श्री सेवा राम शर्मा	11. श्रीमति शीला देवी
3. श्री जय प्रकाश चौहान	12. कु० कौशल्या
4. श्री जीवन सिंह वर्मा	13. कु० सुभद्रा
5. माता राम अत्री	14. श्री कृष्ण लाल
6. श्री शेर जंग	15. श्री क्षमा दत्त
7. श्री जगदीश वर्मा	16. श्री आज्ञा दत्त
8. श्री अभिमन्यु	17. श्री जाती राम
9. लक्ष्मी सिंह तोमर	18. श्री लेख राम शर्मा

किसी स्थानीय संस्था के लोक कलाकारों के सहयोग से आयोजित इस प्रथम कार्यशाला की प्रदेश के भीतर तथा बाहर पर्याप्त प्रशंसा हुई। इस प्रकार यह नया प्रयोग सफल रहा।

\+ + +

(पृष्ठ 94 का शेषांश)

परिणाम स्वरूप स्थापित व्यवस्था हिलती है। इसीलिये सत्तारूढ़ का प्रयास होता है कि कलाकार उसके आश्रय में रहे और उसकी खुशनदी के लिये कार्य करें।

परम्परा का निर्भीक साक्षात्कार करने से परम्परा के साथ जीवन्त सम्बन्ध जुड़ सकता है। यह सम्बन्ध अभिव्यक्ति को सार्थक, समन्वित और एकाग्र करता है। ऐसी अभिव्यक्ति सम्प्रेषण सेतु का निर्माण करती है। यही लोकप्रियता का वास्तविक मार्ग है। बाह्य तड़क भड़क तो सर्जन की उत्कृष्टता का नाश मात्र करती है जिससे संस्कृति का विकृतीकरण है।

हिमाचल प्रदेश के प्रसंग में लोक-नाट्यों की परम्परा का निर्भीक समक्षकार करने के लिए सर्वप्रथम लोक-नाट्यों के रूपों का सर्वेक्षण, उनका अध्ययन और फिर उस अध्ययन के आधार पर चुने हुए रूपों का परिष्कार करने की आवश्यकता है। परिष्कार के समय हमें शैक्षिक और फैशनेबल अनुकरण से बचना होगा और लोक नाट्य में डूबे जागरूक महानुभावों की सहायता लेनी होगी क्योंकि बाहरी विद्वान केवल शिल्प प्रेम से आकर्षित होंगे और वह आकर्षण लोक-नाट्य की पारम्परिक चेतना के उद्घाटन में सहायक नहीं होगा।

—ह० च० पराशर

रंग कला के उत्कर्ष का प्रश्न

यह सर्व सम्मत है कि नाटक के मंचीकरण की रंगकला शेष सभी कलाओं की अपेक्षा सर्वाधिक सशक्त माध्यम है । इस कला में न्यूनाधिक अन्य कलाओं का समावेश रहता है । इसकी चिरस्थायी और व्यापक प्रभाविता सभी को मोह लेती है। सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, औद्योगिक व प्रशासनिक सभी प्रकार के संगठन अपने सांस्कृतिक जत्थों की नाटक मण्डलियों को अधिकाधिक लोकप्रिय बनाने की होड़ करते देखे गये है ।

नृत्यों और नाटियों के बाहुल्य वाले हिमाचल प्रदेश में करियाला आदि ग्राम्य रंगमंच प्रथमतः मनोविनोद का साधन और द्वितीयतः सामाजिक कटाक्ष का माध्यम मात्र रहा । सर्जनात्मक विधा के रूप में इस ने न तो अपना आत्मसाक्षात्कार किया और न आत्मविकास ही । सर्जनात्मक स्तर पर कला का विषय होता है व्यक्ति का अध्ययन तथा उसके अन्य व्यक्तियों के साथ सम्बन्धों का अन्वेषण । कलाकार के मानस के सामने दो संसार रहते हैं, एक स्वप्निल वर्णक्रमीय पीतदर्शिका वाला और दूसरा यथार्थ एवं स्थूल । प्रत्येक स्थिति धुंधली होती है, प्रत्येक दृष्य धुंधला होता है इस धुन्ध के कारण मानवमति एक भ्रामक दर्पण के सामने कार्य करती है । मति में प्राप्त तथ्य और मति से उत्पन्न तथ्य परस्पर भिन्न हो जाते हैं । जिस जाति में वर्णक्रमीय पीतदर्शिका वाले व्यक्ति अधिक हों, उस जाति के कलाकारों की शाब्दिक अभिव्यक्ति पुराणगाथा प्रकार की होती है । वहां भाव प्रधान हो उठते हैं और कर्म गौण हो जाता है । वस्तुओं की अपेक्षा उनके नाम चिरस्थायी हो जाते हैं । वस्तुएं बदलती रहती है, वाचक शब्द वही रहते हैं । जब परवर्ती पाठक वस्तुओं और उनके वाचक शब्द में भेद न कर पाये तो भ्रामकतायें उत्पन्न होती हैं । हिमाचल प्रदेश की प्राकृतिक रमणीयता यहां के जन समूहों में से अधिकांश की मति को पुराणगाथा-प्रिय बनाये हुये है ।

देवगाथा प्रेमी हिमाचल निवासियों में जब सामाजिक जागरण की बेला में ग्राम्य-नाटक के प्रति दिनों दिन अभिरुचि बढ़ने लगी तो साथ साथ सांस्कृतिक और कलात्मक ह्रास के लक्षण भी प्रकट होने लगे । परम्परा के प्रति सत्कार की कमी, प्रयोजन में निष्ठा का अभाव, कलात्मक मूल्यों की अवहेलना, कलाकारों की चेतना के चहूं ओर हिसाबी अकल की जकड़ आदि कारकों ने कला को ऊपर चढ़ने की सीढ़ी मात्र बना दिया । जब रंगमंच शक्ति बटोरने का साधन बन गया तो कला प्रतिद्वन्दियों को पछाड़ने का अस्त्र मात्र बन कर रह गई । ऐसे में मण्डलियों के मालिकों और आयोजकों की प्यास तीखी हुई कि या तो उन्हें बेल-बख्शीश से धन मिले, भले ही अभिनेता अभिनय में नैतिकता से दूर तड़क भड़क दिखाये, अथवा उनका नाम अखबारों में छपे। भले ही अभिनय उपयोगी भी न हो और कलात्मक भी न हो । धन, ख्याति, व्यक्तिगत प्रभुता और राजनैतिक सत्ता के चुघेरे में बन्द रंगकला के सतीत्व का अपहरण होने लगा। कला का कार्य था कि वह मानव मात्र की स्वाधीनता के ध्वज नये-नये भावलोकों में लहराती रहती । तभी तो कला प्रयत्न करती है कि वह सतारूढ़ की दासी न बने । सतारूढ़ सर्जनशीलता से इसलिए सशंक रहता है कि सर्जनशीलता मानसिक आंदोलन करती है जिसके

(शेषांश पृ० 93 पर)

हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार स्व० यशपाल

--सरोज शर्मा

(३ दिसम्बर, १९०३-२३ दिसम्बर, १९७६)

स्वर्गीय श्री यशपाल का जन्म 3 दिसम्बर, 1903 को हुआ । उनके पिता श्री हीरालाल स्थायी रूप से कांगड़ा ज़िला में रहा करते थे ।

माता की उत्कट अभिलाषा थी कि आप आर्य धर्म के तेजस्वी और ब्रह्मचारी प्रचारक बनें। इसलिए उन्होंने आपको गुरुकुल कांगड़ी की शिक्षा दिलानी उचित समझी परन्तु, आप वहां से पूर्णरूपेण स्नातक नहीं बन पाए । गुरुकुल कांगड़ी में कुछ वर्ष अध्ययन करने के पश्चात, आपने सामान्य शिक्षा पद्धति में प्रवेश किया । मैट्रिक के पश्चात, आपने नेशनल कालिज में प्रवेश लिया। सन् 1925 में नेशलन कालिज से बी० ए० पास किया और उसी वर्ष पंजाब विश्वविद्यालय से प्रभाकर की परीक्षा पास की।

परिस्थितियों और वातावरण से बाध्य होकर आपको क्रान्ति की ओर अग्रसर होना पड़ा । आप जिस क्रान्तिकारी संगठन में भाग ले रहे थे उसका लक्ष्य अपने देश से विदेशी सत्ता का उन्मूलन करना तथा उसका उद्देश्य मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त करना था । आपने सुखदेव, भगतसिंह तथा चन्द्र शेखर जैसे सशक्त क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में रहकर प्रत्येक कार्य को बड़ी कुशलता तथा तल्लीनता से निभाया । आपकी शिक्षा गुरुकुल तथा नेशनल कालिज में हुई थी, इनके प्रभावों से आप में राष्ट्रीय भावना सदा देदीप्यमान रही ।

आपकी रुचि पहाड़ी प्रदेशों के भ्रमण में थी। आप विशेषकर ग्रीष्म ऋतु में ठण्डे प्रदेशों में जाकर वहां के मन लुभावने वातावरण में साहित्य रचना करते थे।

आप उपन्यासकार, कहानीकार, एवं निबन्धकार के रूप में प्रसिद्ध रहे । हिन्दी साहित्य के वर्तमान लब्ध प्रतिष्ठित उपन्यासकारों में आपका विशेष स्थान था। आपका एक और रूप भी था जिसे काल के कुठाराघात ने लुप्त कर दिया था—आप एक कुशल अभिनेता और नाट्य निर्देशक थे। आपने अपने कुशल अभिनय का परिचय अपने ही नाटक 'नशे-नशे की बात' के अभिनय में दिया है।

यशपाल जी एक प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार थे। आपको विभिन्न प्रदेशों से कई पुरस्कार तथा अभिनन्दन ग्रन्थ प्राप्त हुए परन्तु 1960 के पश्चात आपने अपनी पुस्तकें पुरस्कार के लिए विचारार्थ भेजने से मना कर दिया।

आपका साहित्यिक व्यक्तित्व वेदना और कष्ट की अग्नि में तप कर निखरा। आपने क्रान्तिकारी जीवन और साहस की निर्भीकता पर साहित्यिक भवन का निर्माण किया। अतः आपका साहित्यक तथा क्रान्तिकारी व्यक्तित्व परस्पर सम्बद्ध रहा।

Scanned with CamScanner

आपने उपन्यास के विषय में विचार व्यक्त करते हुए कहा है "उपन्यास से मेरा अभिप्राय: समाज की विचार-धारा और विचारधारा के तारतम्य को प्रकट करना है। उपन्यास में जिन घटनाओं की हम कल्पना करते हैं वे स्थान और पात्रों के परिवर्तन से प्रायः घटती ही रहती हैं।"

आपके उपन्यासों का आत्यंतिक रूप से विभाजन कठिन है। ये उपन्यास न तो शुद्ध रूप से राजनैतिक, न सामाजिक और न ही ऐतिहासिक कहे जा सकते हैं। उनमें जिस स्वर की प्रधानता है उसी आधार पर उन्हें राजनैतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक अथवा सांस्कृतिक कहा जा सकता है।

आपके 'दादा कामरेड, देशद्रोही, पार्टी कामरेड तथा झूठा सच' राजनैतिक उपन्यास हैं। इनमें राजनैतिक समस्याओं, नीतियों, आन्दोलनों और विचारों की खुलकर अभिव्यक्ति हुई है। कथानक भी राजनैतिक घटनाओं से सम्बन्धित हैं। इनके उद्देश्य भी राजनैतिक दृष्टिकोण से अनुप्राणित हैं और अंत भी इसी दृष्टि किए से गए हैं।

सामाजिक उपन्यासों में 'मनुष्य के रूप' आता है। इसमें मुख्य रूप से सामाजिक समस्या का चित्रण है।

ऐतिहासिक उपन्यासों में 'दिव्या' और 'अमिता' रखे जा सकते हैं। 'दिव्या' में तो केवल विशिष्ट युग की सांस्कृतिक गतिविधियों को आधार मान कर लिखा गया है। 'अमिता' में सम्राट् अशोक की कलिंग विजय की घटना को आधार मान कर कहानी को नया रूप दे दिया गया है।

आपका एक अत्यन्त लघु उपन्यास 'बारह घण्टे' है। इसमें सामाजिक समस्याओं को अनुभूति और तर्क के मिश्रण से चित्रित किया गया है।

आपका एक अद्यतन उपन्यास 'अप्सरा का श्राप' है। इसकी गाथा पौराणिक होते हुए भी उसके साथ लेखक ने स्वतन्त्रता बरती है।

अन्त में यही कहा जा सकता कि है आपके साहित्य के विस्तार तथा उसकी गहराई और विविधता ने हिन्दी साहित्य के अंग प्रत्यंग को परिपुष्ट किया है। आपने अपनी विकास-यात्रा पर चलकर दूसरों के लिए दिशा निर्देशन का कार्य किया है। आप कुरीतियों और अत्याचारों का चित्रण करने के उपरान्त एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। श्री यशपाल का गत 26 दिसम्बर, 1976 को 73 वर्ष की आयु में देहान्त हो गया। हिमाचल को इस महान लेखक पर सदा गर्व रहेगा।

स्वर्गीय यशपाल जी के साथ हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी का पत्र-व्यवहार वर्ष 1973 से ही चल रहा था। अकादमी ने उनकी कुछेक रचनाओं का पहाड़ी भाषा में अनुवाद करना चाहा था। इस पेशकश के प्रति स्वर्गीय श्री यशपाल जी ने सौहार्द और सहभाव प्रकट किया। पाठकों की जानकारी के लिए हम उस पत्र-व्यवहार में से दो पत्र उद्धृत कर रहे हैं –

* * *

No. 4-6/Acadmy 911. Dated, 26th July, 1973.

श्रीयुत यशपाल जी,
बी–335, महानगर लखनऊ ।

आदरणीय महोदय,

हिमाचल प्रदेश की धरती आप जैसे उच्चकोटि के साहित्याचार्य को जन्म देकर धन्य हो गई है। आपको यह जान कर प्रसन्नता होगी कि यहां की सरकार ने प्रदेश की संस्कृति-कला तथा भाषा के संरक्षण तथा सम्वर्धन की दिशा में

कार्य करने के उद्देश्य से हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी की स्थापना की है । इस समय हम विभिन्न योजनाओं को अन्तिमित करने की दिशा में प्रयत्नशील हैं। हमारी यह इच्छा है कि हमारे लब्धप्रतिष्ठ लेखकों कलाकारों तथा कवियों की रचनाओं के अनुवाद पहाड़ी भाषा में भी प्रस्तुत किए जाएं ताकि साधारण पाठक उनसे लाभान्वित हो सके। अकादमी आप द्वारा रचित साहित्य को अनूदित कराने की दिशा में भी रुचि रखती है क्योंकि आपका जीवन तथा कृतियां प्रदेश के युवाओं के लिए गौरवपूर्ण तथा अनुकरणीय हैं। आपके साहित्य ने यहां के लेखकवर्ग को नई राहें दिखाई हैं।

अतः आप से निवेदन है कि कृपया अपनी कृतियों का पहाड़ी भाषा में अनुवाद करने की अनुमति हिमाचल प्रदेश कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी को देकर कृतार्थ करें ताकि हम इस महत्वपूर्ण कार्य को अपने हाथ में ले सकें।

हमें आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है कि आपका आशीर्वाद तथा पथ-प्रदर्शन इस अकादमी को प्राप्त होता रहेगा।

शुभकामनाओं सहित,

आपका,
सचिव,
हिमाचल कला संस्कृति-भाषा अकादमी,
परिमहल, शिमला –9।

* * *

श्री यशपाल जी का अनुवाद के सम्बन्ध में पत्र

प्रिय महोदय,

आपका पत्र सं0 4-8/196 दिनांक 11-1-74 मेरे अस्वास्थ्य और नयी पुस्तक के अन्तिम पृष्ठों की छपायी के समय अति व्यस्तता के कारण नजर से ओझल रहा। आशा है आप अन्यथा न मानेंगे।

हिमाचल की जनता के लिये मेरी जिस रचना का अनुवाद चाहें कर सकते हैं, मानदेय का निर्णय जब होगा, देखा जाएगा।

आपने पूछा है कि दूसरी अकादमियां मुझे क्या मानदेय देती हैं? विदेश की बात छोड़िये। साहित्य अकादमी ने केवल कुछ स्फुट कहानियां ली थीं। प्रति कहानी दो सौ रुपये मात्र पर। यह आठ बरस पहले की बात। दो बरस पूर्व नैशनल बुक ट्रस्ट ने 'मनुष्य के रूप' के लिये चार हजार दिया था, वह आप से आशा नहीं करूंगा। आप निश्चिन्त अनुवाद कराइये। हिमाचल से सम्बन्ध के नाते मुझ पर आपका अधिकार है।

आपको सन्तोष होगा आगरा यूनिवर्सिटी ने अपने 12 फरवरी के कान्वोकेशन में एक हिमाचली को (मुझे) (D. Litt. Hon'.) की मानोपाधि साहित्यिक उपलब्धि के उपलक्ष प्रदान की है।

पत्र की पावती लिखें।

हितू,
यशपाल,

* * * *

P&SHPS—60-ALC/77-30-3-77—500.

यशपाल का असामयिक निधन

सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी तथा महान कथाकार यशपाल का गत 26 दिसम्बर, 1976 को लखनऊ में देहान्त हो गया। आपका हिमाचल प्रदेश से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और शायद ही आपकी ऐसी कोई रचना हो जिसमें हिमाचल के जनजीवन की झलक किसी न किसी रूप में न मिलती हो। आप की माता यद्यपि फिरोज़पुर में रहती थी परन्तु आपके पिता हमीरपुर ज़िला के नादौन नगर क समीप एक छोटे से गांव के निवासी थे जहां आपके भाई-बन्धु अभी भी निवास कर रहे हैं।

यशपाल जी स्वयं को हिमाचली समझने में गर्व अनुभव करते थे। उनके साथ हुए हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी के पत्र-व्यवहार के कुछ अंश इस अंक में पाठकों की जानकारी हेतु प्रकाशित किए जा रहे हैं।

हिन्दी के महान सेवी तथा आज की पीढ़ी को प्रेमचन्द युगीन साहित्य से जोड़ने वाले इस महान स्तम्भ को अकादमी परिवार की विनम्र श्रद्धाञ्जलि!

आर0 एन0 28271/75

निदेशक, शिक्षा विभाग हि0 प्र0 द्वारा पत्राङ्क ई डी एन--एच (8)-6(3) 1/75, 24 फरवरी, 1975 के अनुसार प्रदेश के समस्त कालेजों, पाठशालाओं व ज़िला पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत ।

हि[illegible]चल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, परी महल, शिमला-9 द्वारा प्रसारित तथा उप-नियन्त्रक, मुद्रण तथा लेखन-सामग्री, हिमाचल प्रदेश, शिमला-3 द्वारा मुद्रित।

Scanned with CamScanner